कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः ॥
प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥ १३ ॥
क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ॥
शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥ १४ ॥
दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ॥
शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ॥ १५ ॥
तदेतत्कर्माभिहितं संस्थिता यत्र वर्णिनः ॥
बहुमानमिह प्राप्य प्रयांति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणोंके छः कार्य हैं, उनमें यजन, दान और अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और दान लेना, पढाना, यज्ञ कराना यह तीन जीविका हैं ॥ १३ ॥ क्षत्रियोंके पांच कार्य हैं, उनमें यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और शस्त्रका व्यवहार और प्राणियोंकी रक्षा करना यह दो जीविका हैं ॥१४॥ वैश्यको भी यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और वार्ता अर्थात् खेती, वाणिज्य, गौओंकी रक्षा और व्यवहार यह चार आजीविका हैं, शूद्रोंकी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवा करना यही तपस्या है और शिल्पकार्य उनकी जीविका है ॥१५॥ मैंने यह धर्म कहा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण इस धर्म के अनुसार चलनेपर इस कालमें बहुतसा सन्मान प्राप्त कर परलोकमें श्रेष्ठ गतिको पाते हैं ॥१६॥

ये व्यपेताः स्वधर्माच्च परधर्मेष्ववस्थिताः ॥
तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते ॥ १७ ॥

जो पूर्वोक्त अपने २ धर्मका त्याग कर दूसरे धर्मका आश्रय करते हैं, राजा उनको दण्ड देकर स्वर्गका भागी होता है ॥ १७ ॥

आत्मीये संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते ॥
परधर्मो भवेत्त्याज्यः सुरूपपरदारवत् ॥ १८ ॥

अपने धर्ममें स्थित होकर शूद्र भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं, दूसरोंका धर्म सुन्दरी पराई स्त्री के समान तजनेके योग्य है ॥ १८ ॥

वध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ॥
यतो राष्ट्रस्य हंतासौ यथा वह्नेश्च वै जलम् ॥ १९ ॥

जप, होम इत्यादि ब्राह्मणोंके उचित कर्ममें रत होनेसे शूद्रका राजा वध करै, कारण कि जलधारा जिस प्रकारसे अग्निको नष्ट करती है, उसी प्रकारसे यह जप होममें तत्पर हुआ शूद्र सम्पूर्ण राज्यका नाश करता है ॥ १९ ॥

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः ॥
याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनं स्मृतम् ॥ २० ॥

१ शास्तिः शासनम् ।

दान लेना, पढना, निषिद्ध वस्तुका खरीदना, वेचना और यज्ञ कराना इन चारों कर्मोंके करनेसे क्षत्रिय और वैश्य पतित होते हैं ॥ २० ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥ २१ ॥

ब्राह्मण मांस, लाख और लवणके वेंचनेसे तत्काल पतित होता है और दूधके वेंचनेसे भी तीन दिनमें शूद्रके समान होजाता है ॥ २१ ॥

अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥
तं ग्रामं दंडयेद्राजा चौरभक्तददंडवत् ॥ २२ ॥
विद्वद्भोज्यमविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुंजते ॥
तेष्वनावृष्टिमिच्छंति महद्वा जायते भयम् ॥ २३ ॥

भक्षण न करने योग्य अन्नको, पूर्वभुक्तसे अवशिष्ट (बचेहुए) अन्नको, स्त्री और शूद्रके जूंठे अन्नको या भक्षण न करनेयोग्य मांसको जो मनुष्य भोजन करता है, वह सात दिनतक जौकी लपसी (दलिया) को पिये तो शुद्ध होता है ॥ ७२ ॥

असंस्पृश्येन संस्पृष्टः स्नानं तस्य विधीयते ॥
तस्य चोच्छिष्टमश्नीयात्षण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत्॥७३॥

जो जाति स्पर्श करनेके योग्य नहीं है उसके स्पर्श करनेवाले द्विजको स्नान करना योग्य है, जिसने उसका जूठा खाया है वह छैः महीनेतक कृच्छ्र व्रत करै ॥ ७३ ॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव वा ॥
पुनः संस्कारमर्हंति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ७४ ॥

जिस ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यने विष्ठा, मूत्र वा सुरा जिसमें मिली हो ऐसी कोई वस्तु अज्ञान (भूल) से खाई है, तो वह फिर संस्कारके (यज्ञोपवीत इत्यादिके) योग्य है॥७४॥

वपनं मेखला दंडं भैक्ष्यचर्यं व्रतानि च ॥
निवर्तंते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्माणि ॥ ७५ ।

उन द्विजातियोंको पुनःसंस्कारके समय मस्तक मुडाना मेखल का धारण करना, दंडका ग्रहण करना, भिक्षाका माँगना और ब्रह्मचर्यका धारण करना यह कार्य करने नहीं होंगे॥७५॥

गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अंतःस्थशवदूषिताम् ॥
प्रत्याज्यं मृन्मयं भांडं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ ७६ ॥
गृहान्निष्क्रम्य तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् ॥
गोमयेनोपलिप्याथ छागेनाघ्रापयेत्पुनः ॥ ७७ ॥
ब्राह्मैर्मंत्रैश्च पूतं तु हिरण्यकुशवारिभिः ॥
तेनैवाभ्युक्ष्य तद्वेश्म शुध्यते नात्र संशयः ॥ ७८ ॥

---

१ पूर्वभुक्तावशिष्टमन्नम् ।

२ "प्रयोज्यं" ऐसा पाठ हो तो ' मट्टीके पात्रोंको वर्ते और सिद्ध (अन्यके) पकाये, अन्नको भक्षण करे' ऐसा अर्थ जानना ।

३ छागसंबंधिना पुरोषेण ।

जिस घरमें मुर्दा पडा है उसकी शुद्धि किस प्रकार होती है सो मैं कहता हूं. उस घरके मट्टीके पात्र और सिद्ध हुए अन्नको त्याग दे ॥ ७६ ॥ उन सब वस्तुओंको घरसे निकालकर फिर गोबरसे घरको लिपावै; और पीछे बकरीके गोबरसे धूपित करै ॥ ७७ ॥ ब्राह्म मंत्रोंको पढकर सुवर्ण और कुशाओंसे जलको घरमें छिडकै तब उस गृहकी शुद्धि होनेमें कोई संदेह नहीं है ॥ ७८ ॥

राजन्यैः श्वपचैर्वापि बलाद्विचलितो द्विजः ॥
पुनः कुर्वीत संस्कारं पश्चात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ ७९ ॥

राजा अथवा अंत्यज चांडाल जिस किसी ब्राह्मणको बलपूर्वक विचलित (श्रेष्ठ मार्गसे अलग करके अभक्ष्य वस्तुका भोजन कराय असत् मार्गमें) करे तो यह ब्राह्मण तीन प्राजापत्य करके फिर संस्कार करे ॥ ७९ ॥

शुना चैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते ॥
तदुच्छिष्टं तु संप्राश्य यत्नेन कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ८० ॥

जिसको कुत्तेने स्पर्श कियाहो वह स्नान करै; और जिसने जूंठा भोजन किया हो तो वह यत्नपूर्वक कृच्छ्रव्रत करे (तब शुद्ध होता है)॥ ८० ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि सूतकस्य विनिर्णयम् ॥
प्रायश्चित्तं पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ॥ ८१ ॥

इसके पीछे सूतक अर्थात् आशौचके विषयका वर्णन करता हूं और उसके पीछे प्रायश्चित्तोंका वर्णन करूंगा ॥ ८१ ॥

एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥
त्र्यहात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनैः ॥ ८२ ॥

जो अग्नि और वेदकरके समन्वित (युक्त)है वह एक ही दिनमें, जो केवल वेदपाठी ही है वह तीन दिनमें और जो अग्निहोत्री और वेदपाठी नहीं है ऐसे निर्गुण ब्राह्मण दश दिनमें शुद्ध होता है ॥ ८२ ॥

व्रतिनः शास्त्रपूतस्य आहिताग्नेस्तथैव च ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ॥ १३२ ॥

इस प्रकारसे यह द्विजातियोंका धर्म कहा, इसके आगे स्त्री शूद्र जिन कारणोंसे पतित होते हैं उसका वर्णन करता हूं, हे महर्षिगण ! तुम श्रवण करो ॥ १३२ ॥

जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् ॥
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ॥ १३३ ॥

जप, तपस्या, तीर्थयात्रा, संन्यास, मन्त्रसाधन, देवताओंकी आराधना यह छैः कर्म स्त्री शूद्रोंको पतित करनेवाले हैं ॥ १३३ ॥

जीवद्भर्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १३४ ॥

जो स्त्री स्वामीके जीवित रहतेहुए उपवास करके व्रत धारण करती है, वह स्त्री अपने स्वामीकी आयुको हरण करती है; और अन्तमें वह नरकको जाती है ॥ १३४ ॥

तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥
शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ॥ १३५ ॥

यदि स्त्रीको तीर्थके स्नान करनेकी इच्छा है तो वह अपने पतिके चरणोदकका पान करै, तब वह स्त्री शिव या विष्णुभगवान्के परम पद (कैलास वा वैकुण्ठ) को प्राप्त कर सकैगी ॥ १३५ ॥

जीवद्भर्तरि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ॥
श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥ १३६ ॥

स्वामीकी जीवित अवस्थामें वा मृत्युकी अवस्थामें स्त्री वामांगी है और पुरुष दाहिनी ओरका भागी है । परन्तु श्राद्ध, यज्ञ और विवाहके समयमें स्त्री दाहिनी ओरको ही बैठती है ॥ १३६ ॥

सोमः शौचं ददौ तासां गंधर्वाश्च तथांगिराः ॥
पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्यत्वं योषितां सदा ॥ १३७ ॥

चन्द्रमा गंधर्व और अङ्गिरा (बृहस्पति) ने इन स्त्रियोंको शुद्धता दान की है और अग्निने भी सम्पूर्ण शुद्धता दी है; इस कारण स्त्री सर्वदा ही पवित्र है ॥ १३७ ॥

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥
विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च ॥ १३८ ॥
वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थं च निबोधयेत् ॥
तदासौ वेदवित्प्रोक्तो वचनं तस्य पावनम् ॥ १३९ ॥
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः ॥
स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामयुतायुतैः ॥ १४० ॥

ब्राह्मणके वंशमें जन्म लेनेसे ब्राह्मण होता है, और जब उसका संस्कार होता है (उपनयन होता है) तब उसको द्विज कहते हैं, विद्यासे विप्रत्व प्राप्त होता है और उक्त जन्म, संस्कार और विद्या इन तीनोंसे "श्रोत्रिय" पदका वाच्य होता है ॥ १३८॥ जो ब्राह्मण वेद शास्त्रको पढते और उसकी आज्ञाके अनुसार कार्य करते हैं उनको वेदवित् (वेदका जाननेवाला) कहा जाता है; उनके वचन पवित्रताके देनेवाले हैं ॥ १३९ ॥ वेदका जाननेवाला एक भी ब्राह्मण जिस धर्मका आचरण करता है, वही श्रेष्ठ धर्म है और मूर्खोंके सहस्रों यत्न करनेपर भी वह धर्म नहीं होता ॥ १४० ॥

देवयात्रामें (देवताओंके दर्शनके निमित्त जानेमें) विवाहमें, यज्ञ आदि प्रकरणमें और सम्पूर्ण उत्सवोंमें स्पर्श करनेके योग्य और अयोग्य विचार नहीं होता है ॥ २४७ ॥

आरनालं तथा क्षीरं कंदुकं दधि सक्तवः ॥
स्नेहपकं च तक्रं च शूद्रस्यापि न दुष्यति ॥ २४८ ॥
आर्द्रमांसं घृतं तैलं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥
अंत्यभांडस्थितास्त्वेते निष्क्रांताः शुद्धिमाप्नुयुः ॥ २४९ ॥

आरनाल (चनेआदिकी खटाई) दूध, कंदुक,दही, सत्तू, स्नेहपक,(घी तेलसे पका हुआ) पदार्थ और मट्ठा यह यदि शूद्रके यहांका भी हो तो (उसको भक्षण करनेसे ब्राह्मणोंको) दोष

नहीं है ॥ २४८ ॥ आर्द्रमांस (विना पका हुआ मांस) घृत, तेल और फलसे उत्पन्न हुए स्नेह (इंगुदीवृक्षका तेल आदि) यह चांडालके पात्रसे निकलते ही शुद्ध होजाते हैं ॥२४९॥

अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु ॥
अहोरात्रोषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २५० ॥

यदि ब्राह्मणने विना जाने हुए शूद्रके यहाँका जलपान कर लिया है तो वह स्नान करनेके उपरान्त पंचगव्यका पान कर एक दिनतक उपवास करे तब शुद्ध होता है ॥ २५० ॥

आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकवान्भवेत् ॥
अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादग्निं विनिर्दिशेत् ॥ २५१ ॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री हैं वह यदि महापातकी होजाय तौ वह जलमें होमके पात्रोंको फेंककर फिर अग्निको ग्रहण करै ॥ २५१ ॥

यो गृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते ॥
अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥ २५२ ॥
वृथापाकस्य भुंजानः प्रायश्चित्तं चरेद्द्विजः ॥
प्राणानाशु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २५३ ॥

जो मनुष्य विवाहकी अग्निको ग्रहण करके अपनेको गृहस्थ मानते हैं (और अग्निकी रक्षा नहीं करते) उनका अन्न भोजन करनेके योग्य नहीं है, कारण कि उनका भोजन वृथापाक (निष्फल) कहा गया है (देवता उसके अन्नको भोजन नहीं करते इसीसे उसका पाक निष्फल है) ॥ २५२ ॥ इस वृथापाकके अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करले वह इस प्रायश्चित्तको करै कि जलके बीचमें तीनवार प्राणायाम करके घृतका भोजन करे तब शुद्ध होता है ॥ २५३ ॥

वैदिके लौकिके वापि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ॥
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥ २५४ ॥

पाँच हत्याके पापको दूर करनेके निमित्त वैदिक अग्निमें (वेदके मंत्रोंसे अभिमंत्रित की हुई अग्निमें) वा लौकिक अग्निमें (पदार्थ पकानेके निमित्त प्रज्वलित अग्निमें) वा हुतोच्छिष्टमें (नित्य जिसमें होम किया हो ऐसी अग्निमें) अथवा जलमें वा पृथ्वीमें वैश्वदेव करै ॥२५४॥

कनीयान्गुणवांश्चैव श्रेष्ठश्चेन्निर्गुणो भवेत् ॥
पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्निं धारयेद्बुधः ॥ २५५ ॥
ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्यात्याग्निं यवीयकः ॥
नित्यं नित्यं भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशयः ॥ २५६ ॥

रजस्वला, सूतिका, वा अन्त्यजाका स्पर्श करनेवाला मनुष्य तीन रात्रितक उपवास करनेसे शुद्ध होता है, यह पुरातन विधि है ॥ २७१ ॥

संसर्गे यदि गच्छेच्चेदुदक्यया तथांत्यजैः ॥
प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः पूर्वं स्नानं समाचरेत् ॥ २७२ ॥
एकरात्रं चरेन्मूत्रं पुरीषं तु दिनत्रयम् ॥
दिनत्रयं तथा पाने मैथुने पंच सप्त वा ॥ २७३ ॥

जिस मनुष्यका रजस्वलाके साथ वा अन्त्यजोंके साथ स्पर्श होजाय तो वह मनुष्य प्रायश्चित करनेके योग्य है और प्रायश्चित्तके प्रथम स्नान करै ॥ २७२ ॥ और एक दिन गोमूत्र पिये और तीन दिन गौका गोबर भक्षण करै, यदि विजातीय चांडाली आदि स्त्रीके साथ जल पिया हो तो तीन दिन गोमूत्र और तीन दिन गोबर भक्षण करै, यदि पूर्वोक्त स्त्रीके साथ मैथुन किया हो तो पांच तथा सात दिन गोमूत्र और गोबरका सेवन करनेसे दोष दूर होता है ॥ २७३ ॥

स्मृत्यंतरम् ।

अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ॥
पूयंते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोऽपि ये ॥ २७४ ॥

अन्य स्मृतियोंमें भी कहा है कि अपनी जातिके स्वीकार करनेसे या ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे महापातकी पापी भी शुद्ध हो जाते हैं ॥ २७४ ॥

भोजने तु प्रसक्तानां प्राजापत्यं विधीयते ॥
दंतकाष्ठे त्वहोरात्रमेष शौचविधिः स्मृतः ॥ २७५ ॥

पूर्वोक्त विना शुद्ध हुए पातकियोंके साथ भोजन करनेवाला पुरुष प्राजापत्य नामक व्रत करनेसे शुद्ध होता है और उनके साथ दंतधावन करनेसे एक दिन रातमें शुद्ध होता है, यही पवित्र होनेकी विधि है ॥ २७५ ॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानचंडालवायसैः ॥
निराहारा भवेत्तावत्स्नात्वा कालेन शुद्धयति॥ २७६ ॥
रजस्वला यदा स्पृष्टा उष्ट्रजंबुकशंबरैः ॥
पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २७७ ॥
स्पृष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च या ॥
एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २७८ ॥
स्पृष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मण्या क्षत्रियी च या ॥
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्व्यासस्य वचनं यथा ॥ २७९ ॥
स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या वैश्यसंभवा ॥
चतूरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ २८० ॥

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या शूद्रसंभवा ॥
षड्रात्रेण विशुद्धिः स्याद्ब्राह्मणी कामकारतः ॥ २८१ ॥
अकामतश्चरेदूर्ध्वं ब्राह्मणी सर्वतः स्पृशेत् ॥
चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥ २८२ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको कुत्ता, कौआ, अथवा चांडाल छूले तो वह रजकी शुद्धितक निरा-

गर्भादेकादशे सैके कुर्यात्क्षत्रियवैश्ययोः ॥
कारयेद्विजकर्माणि ब्राह्मणेन यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

१ यहांपर पुंसवन संस्कारका कथन इस कारण नहीं किया कि वह पुत्र ही होगा ऐसा किसी कारण से विदित हो जाय तभी करना लिखा है ।
२ इसीको "चूडाकरण चौल संस्कार" भी कहते हैं।

ब्राह्मणका गर्भसे लगाकर आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करै, कारण कि ब्राह्मण होनेपर ही गायत्रीका अधिकारी होता है ॥ १३ ॥ क्षत्रियका यज्ञोपवीत गर्भसे लगाकर ग्यारहवें वर्षमें करै, और वैश्यका यज्ञोपवीत बारहवें वर्षमें करना उचित है ॥ १४ ॥

शूद्रश्चतुर्थो वर्णस्तु सर्वसंस्कारवर्जितः ॥
उक्तस्तस्य तु संस्कारो द्विजे स्वात्मनिवेदनम् ॥ १५ ॥

और चौथा शूद्रवर्ण सम्पूर्ण संस्कारोंसे हीन है; उसका संस्कार केवल यहीकहा है कि वह तीनों वर्णोंको आत्मसमर्पण करै अर्थात् उनकी सेवा भली भांतिसे करता रहै ॥ १५ ॥

यो यस्य विहितो दंडो मेखलाजिनधारणम् ॥
सूत्रं वस्त्रं च गृह्णीयाद्ब्रह्मचर्येण यंत्रितः ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्य (यज्ञोपवीत होनेसे लेकर प्रथम आश्रम) में जिस वर्णका जो जो दंड, मेखला, (मूंजकी कोंधनी) मृगछाला, सूत्र, यज्ञोपवीत जनेऊ, वस्त्र, अन्यत्र (मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें) कहे हैं, उस २ का नियमसहित धारण करै ॥ १६ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय चोपस्पृश्य पयस्तया ॥
त्रिरायम्य ततः प्राणांस्तिष्ठेन्मौनी समाहितः ॥ १७ ॥
अब्दैवतैः पवित्रैस्तु कृत्वात्मपरिमार्जनम् ॥
सावित्रीं च जपंस्तिष्ठेदा सूर्योदयनात्पुरा ॥ १८ ॥

ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर शुद्ध जलसे तीनवार आचमन और प्राणायाम करके सावधान होकर मौन धारण कर बैठे ॥ १७ ॥ अप् (जल) है देवता जिनकी ऐसे मंत्रोंसे देहका मार्जन (देहसे शिरपर्यन्त छींटा मार) कर (पूर्वमुख हो) सूर्योदयतक गायत्रीका जप करता हुआ बैठा रहै ॥ १८ ।

१ यह कालनियम अष्टम वर्षका भी उपलक्षक (सूचक) है कारण कि "गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्" ऐसा मनुका वचन है। ब्रह्मवर्चसकाम हो अर्थात् बालक प्रबुद्ध हो तो उसको शीघ्र ब्रह्मवर्चस्वी (ब्रह्मतेजःसम्पन्न)होनेके अर्थ पाँचवें वर्षमें भी उपनयन करदे क्योंकि "ब्रह्मवर्चस कामस्य कार्यो विप्रस्य पंचमे" ऐसा मनुका वचन है; यह मुख्यकाल यहांपर कहा है,गौण काल गर्भसे षोडश वर्षतक भी अन्यत्र कहा, ततःपर व्रात्य(अर्थात् संस्कारसे हीन) होजाता है, ऐसा होनेपर व्रात्यस्तोम यज्ञ करके उसका संस्कार होसकता है, एवं क्षत्रियादिकके विषयमें भी मुख्य कालसे द्विगुणा काल समझ लेना ।
२ तीन वा चार घडी रात्रि शेष रहनेपर।
३ यहां दो वार विना मंत्रके तीसरे वार "ऋतञ्च सत्यञ्च" इस अघमर्षण सूक्तसे आचमन करना बाद श्रोत्र वंदन आदिक करके प्राणायाम सप्तव्याहृतिक सशिरस्क सावित्रीमंत्रसे करै, ऐसा मन्वादि में स्पष्ट लिखा है सो वहांसे जानलेना(यहांसे ब्रह्मचर्य धर्मको अध्याय समाप्त होनेतक कहेंगे)
४ "आपो हि ष्ठा" इत्यादिक इसका मंत्र है ।
५ यह अशक्तिपक्षमें बैठकर जप करना लिखा है, शक्ति हो तो खडा होकर जपे क्योंकि "गायत्र्यभिमुखी प्रोक्ता तस्मादुत्थाय तां जपेत्" ऐसा वचन है ।

नमस्कार शब्दसे व्यवहार करता हुआ शूद्र पतित नहीं होता ॥ ९ ॥

शूद्रोऽपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा ॥
श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरो मतः ॥ १० ॥
प्राणानर्थांस्तथा दारान्ब्राह्मणार्थे निवेदयेत् ॥
स शूद्रजातिर्भोज्यः स्यादभोज्यः शेष उच्यते ॥ ११ ॥

---

१ यद्वा–ब्राह्मणादि त्रैवर्णिकका प्रतिदिन नमस्कार करना उसको कहा है उसे करता हुआ शूद्र हानिको नहीं प्राप्त हो सकता है, इस कारण अवश्य प्रतिदिन उन्हें प्रणाम कराके ऐसा भी अर्थ किन्हीं २ का अभिमत है ।

शूद्र दो प्रकारके हैं एक श्राद्धका अधिकारी और दूसरा अनधिकारी, उन दोनोंमेंसे श्राद्धके अधिकारीका अन्न भोजन करना उचित है और अनधिकारीका उचित नहीं ॥ १० ॥ जो शूद्र अपनी स्त्री, धन, प्राण इनको ब्राह्मणकी सेवामें समर्पण कर दे, उस शूद्रका अन्न भोजन करने योग्य है और शेष शूद्रका अन्न भोजन करने योग्य नहीं ॥ ११ ॥

कुर्याच्छूद्रस्तु शुश्रूषां ब्रह्मक्षत्रविशां क्रमात् ॥
कुर्यादुत्तरयोर्वैश्यः क्षत्रियो ब्राह्मणस्य तु ॥ १२ ॥

और शूद्र क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनकी सेवाको करै, वैश्य ब्राह्मण, क्षत्रिय इनकी सेवा करै, और क्षत्री केवल ब्राह्मणकी ही सेवा करै ॥ १२ ॥

आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा ॥
परिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता ॥ १३ ॥

वैश्य और क्षत्रिय इनको तीन आश्रम कहे हैं, अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमकी प्राप्ति तौ केवल ब्राह्मणको ही कही है ॥ १३ ॥

आश्रमाणामयं प्रोक्तो मया धर्मः सनातनः ॥
यदत्राविदितं किंचित्तदन्येभ्यो गमिष्यथ ॥ १४ ॥
इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यह चारों आश्रमोंका सनातन धर्म मैंने तुमसे कहा; इसमें जो कुछ जानना तुमको शेष रहा है उसको तुम इतर ग्रंथोंसे जान जाओगे ॥ १४ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विष्णुस्मृतिः समाप्ता ॥ २ ॥

स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनः पुनः ॥
सोऽपि सृष्ट्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ११ ॥
यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ॥
असृजत्क्षत्रियान्बाह्वोर्वैश्यानप्यूरुदेशतः ॥ १२ ॥
शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः ॥
यथा प्रोवाच भगवान्पद्मयोनिः पितामहः ॥ १३ ॥
तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ॥
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥ १४ ॥

पूर्व कालमें सृष्टिके रचनेवाले जलके ऊपर लक्ष्मीके सहित शेषकी शय्यापर परमात्मा देव भगवान् विष्णु योगनिद्रामें मग्न थे ॥ ९ ॥ उन सोते हुए भगवान्की नाभिसे एक बडा कमल उत्पन्न हुआ, उस कमलके बीचमेंसे वेद वेदांगोंके भूषण ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ १० ॥ देवादिदेव भगवान् विष्णुजीने उनसे वारंवार जगत्की सृष्टि रचनेके लिये कहा; तब ब्रह्माजीने भी देवता, असुर, मनुष्य इनके सहित सम्पूर्ण जगत्को रचकर ॥ ११ ॥ यज्ञकी सिद्धिके लिये पापरहित ब्राह्मणोंको मुखसे उत्पन्न किया, इसके पीछे क्षत्रियोंको भुजाओंसे और वैश्योंको जंघाओंसे रचा ॥ १२ ॥ और शूद्रोंको चरणोंसे रचकर भगवान् पद्मयोनिने उनसे जो वचन कहे, हे द्विजोत्तमो ! उन बचनोंको मैं तुमसे कहता हूं तुम श्रवण करो और वह वचन धन, यश, अवस्था, स्वर्ग, मोक्ष फल इनके देनेवाले हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ॥
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥ १५ ॥

ब्राह्मणीके गर्भमें ब्राह्मणके औरससे उत्पन्न हुआ मनुष्य ही ब्राह्मण कहाता है; उसके धर्म और उसके रहने योग्य देशको कहता हूं ॥ १५ ॥

कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते ॥
तस्मिन्देशे वसेद्धर्माः सिद्ध्यंति द्विजसत्तमाः ॥ १६ ॥

हे द्विजसत्तमगण ! जिस देशमें कालामृग स्वभावसे ही विचरण करै उस देशमें ब्राह्मण निवास करै, कारण कि किये हुये धर्म उसी देशमें सिद्ध होते हैं ॥ १६ ॥

षट्कर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥
तैरेव सततं यस्तु वर्तयेत्सुखमेधते ॥ १७ ॥
अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा ॥
दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति प्रोच्यते ॥ १८ ॥

महात्मा ब्राह्मणोंके निजके छैः कर्म कहे हैं; जो उन छैः प्रकारके कर्मोंसे निरन्तर जीवन व्यतीत करता है, वही सुखी होता है, अर्थात् धनवान् पुत्रवान् होता है ॥ १७ ॥ पढाना पढना, यज्ञ कराना और यज्ञ करना, दान और प्रतिग्रह ये छैः प्रकारके कर्म कहे हैं ॥ १८ ॥

अध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात् ॥
शुश्रूषाकरणं चेति त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥ १९ ॥
एषामन्यतमाभावे वृथाचारो भवेद्द्विजः ॥
तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥ २० ॥
योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत् ॥
विदितात्प्रतिगृह्णीयाद्गृहे धर्मप्रसिद्धये ॥ २१ ॥
वेदश्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः ॥

छूटजाता है, इस भांति जिसका देह नष्ट होगया है उसका नाश कभी नहीं होता ॥ १२॥

मया वः कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागशः ॥
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥ १३ ॥

हे द्विजोत्तमो ! मैंने वर्ण और आश्रमके भेद और उनका सनातन धर्म संक्षेपसे तुम लोगोंसे कहा ॥ १३ ॥

श्रुत्वैव मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥ १४ ॥

स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले धर्मको इस प्रकार सुनकर उन हारीतमुनिको नमस्कार करकै सब मुनि प्रसन्न होकर अपने २ आश्रमको चलेगये ॥ १४ ॥

धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ॥
अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥ १५ ॥

जो मनुष्य हारीतमुनिके कहे हुए धर्मशास्त्रको पढकर धर्मका आचरण करता है वह मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

ब्राह्मणस्य तु यत्कर्म कथितं बाहुजस्य च ॥
ऊरुजस्यापि यत्कर्म कथितं पादजस्य च ॥ १६ ॥
अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥
यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ॥ १७ ॥
तस्मात्स्वधर्मं कुर्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥
राजेंद्र वर्णाश्चत्वारश्चत्वारश्चापि चाश्रमाः ॥ १८ ॥
स्वधर्मं येऽनुतिष्ठन्ति ते यांति परमां गतिम् ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रको जो कर्म इसमें कहा है ॥१६॥ उसके विरुद्ध बर्ताव जो करता है, वह जातिसे शीघ्र ही पतित होजाता है. जो धर्म जिस वर्णका कहा है वह उसी प्रकारका उस वर्णका है ॥१७॥ इस कारण ब्राह्मण आपत्कालको छोडकर अपने धर्मको करै, हे राजाओंके स्वामी ! चार वर्ण और चार ही आश्रम हैं ॥ १८ ॥ जो अपने धर्मको करते हैं वे परम गतिको प्राप्त होते हैं ।

स्वधर्मेण यथा नृणां नरसिंहः प्रसीदति ॥ १९ ॥
न तुष्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥
अतः कुर्वन्निजं कर्म यथाकालमतन्द्रितः ॥ २० ॥
सहस्रानीकदेवेशं नरसिंहं च सालयम् ॥ २१ ॥

भगवान् नरसिंहदेव जिस प्रकारसे अपने धर्ममें स्थित मनुष्योंपर प्रसन्न होते हैं ॥१९॥ उसी भांति अन्य कर्मसे प्रसन्न नहीं होवे, इस कारण सर्वदा आलस्यरहित होकर समयपर कर्म करता हुआ मनुष्य ॥ २० ॥ सहस्रों देवताओंके स्वामी समंदिर भगवान्को ॥ २१ ॥

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ॥
सत्यं सुखं रूपमनंतमाद्यं विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सर्वदा परब्रह्मको उत्पन्न हुए वैराग्यके बलसे क्रियावान् योगी जो ध्यान करता है वह देहको त्यागकर सत्य सुखरूप अनंत विष्णुके पदको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति हारीतस्मृतिः समाप्ता ३.

शूद्रोऽपि नरकं याति ब्राह्मणोऽपि तथैव च ॥४९॥

जो प्रतिदिन महीनेभरतक शूद्रके अन्नको खाता है;वह इसी जन्ममें शूद्र होजाता है, और मरकर उसे कुत्तेकी योनि मिलती है ॥ ४७ ॥ शूद्रका अन्न, शूद्रके साथ मेल और शूद्रके संग एक आसनपर बैठना, शूद्रसे किसी विद्याका सीखना, यह प्रतापवान मनुष्यको भी पतित करदेता है ॥ ४८ ॥ शूद्रके विना प्रणाम किये हुए जो ब्राह्मण आशीर्वाद देते हैं वह ब्राह्मण और शूद्र दोनों ही नरकको जाते हैं ॥ ४९ ॥

दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ॥
पाक्षिकं वैश्य एवाहुः शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ५० ॥

जन्ममरणके सूतकसे ब्राह्मण दशदिनमें शुद्ध होता है, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पंद्रह दिनमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होता है ॥ ५० ॥

अग्निहोत्री तु यो विप्रः शूद्रान्नं चैव भोजयेत् ॥
पंच तस्य प्रणश्यंति चात्मा वेदास्त्रयोऽग्नयः ॥ ५१ ॥

जो अग्निहोत्री ब्राह्मण शूद्रके अन्नको खाता है उसकी देह वेद और तीनों अग्नि यह पांचों नष्ट होजाते हैं ॥ ५१ ॥

शूद्रान्नेन तु भुक्तेन यो द्विजो जनयेत्सुतान् ॥
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्तते ॥ ५२ ॥

जो ब्राह्मण शूद्रके अन्नको खाकर पुत्र उत्पन्न करता है, वह पुत्र उसीके हैं जिसका वह अन्न था, कारण कि अन्नसे ही वीर्यकी उत्पत्ति है ॥ ५२ ॥

शूद्रेण स्पृष्टमुच्छिष्टं प्रमादादथ पाणिना ॥
तद्द्विजेभ्यो न दातव्यमापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ५३ ॥

शूद्रने जिसे अपने हाथसे छूलिया हो वह उच्छिष्टको ब्राह्मणको न दे,यह वचन आपस्तंब मुनिका है ॥ ५३ ॥

ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य च पर्वसु ॥
वैश्येष्वापत्सु भुंजीत न शूद्रेऽपि कदाचन ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणका अन्न सर्वदा खानेके योग्य है, क्षत्रियके अन्नको पर्व (यज्ञके) समयमें खा ले, आपत्तिके आजानेपर वैश्यके अन्नको भोजन करे, परन्तु शूद्रके अन्नको कभी भोजन न करे ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणान्ने दरिद्रत्वं क्षत्रियान्ने पशुस्तथा ॥
वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्ने नरकं ध्रुवम् ॥ ५५ ॥
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

ब्राह्मणके अन्नको भोजन करनेवाला दरिद्री, क्षत्रियके अन्नका भोजन करनेवाला पशु होता है और जो वैश्यके अन्नको खाता है वह शूद्र होता है और शूद्रके अन्नको खानेवाला निश्चय ही नरकको जाता है ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणका अन्न अमृतस्वरूप है, क्षत्रियका अन्न दूधके समान है, वैश्यका अन्न केवल अन्न ही मात्र है और शूद्रका अन्न निश्चय ही रुधिर है॥५६॥

दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ॥

Ashtadash Smrit...

वाद जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्राह्मण अज्ञानसे सूतकमें जल पी ले अथवा भात खा ले ॥५८॥ तो वमन करके आचमन करै और भलीभांतिसे वरुणके मन्त्रोंके पढे हुए जलसे शरीरको छिडकै ॥ ५९ ॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसान्निधौ ॥
आचरेज्जपकाले च पादुकानां विसर्जनम् ॥ ६० ॥
पादुकासनमारुढो गेहात्पंचगृहं व्रजेत् ॥
छेदयेत्तस्य पादौ तु धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ ६१ ॥
अग्निहोत्री तपस्वी च श्रोत्रियो वेदपारगः ॥
एते वै पादुकैर्यान्ति शेषान्दंडेन ताडयेत् ॥ ६२ ॥

127

अग्निहोत्रशाला, गोशाला, देव और ब्राह्मणोंके निकट जपके समयमें खडाउँओंको त्याग दे ॥ ६० ॥ जो मनुष्य खडाउँओं पर चढकर अपने घरसे पांचघरतक भी जाय तो राजाको उचित है कि उसके पैरोंको कटवा डालै ॥ ६१ ॥ कारण कि अग्निहोत्री, तपस्वी, श्रोत्रिय (वेदोक्त कर्मोंका करनेवाला) और वेदका पार जानेवाला यही खडाऊंपर चढकर चलनेके अधिकारी हैं और पुरुष राजाके ताडन करने योग्य हैं ॥ ६२ ॥

जन्मप्रभृतिसंस्कारे चूडांते भोजने नवे ॥
असापिंडे न भोक्तव्यं चूडस्यांते विशेषतः ॥ ६३ ॥

जन्म आदि संस्कारमें, चूडाकर्ममें,अन्नप्राशनमें अपने असपिंडके घर भोजन न करै और चूडाकर्ममें तो कदापि न करै ॥ ६३ ॥

याचकान्नं नवश्राद्धमपि सूतकभोजनम् ॥
नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ६४ ॥

भिक्षुकका अन्न, नवश्राद्ध (जो मरनेके ग्यारहवें दिन होता है) सूतकका अन्न और स्त्रीके पहले गर्भाधानमें अन्नका खानेवाला चांद्रायणव्रतका प्रायश्चित्त करै ॥ ६४ ॥

अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यस्य दीयते ॥
तस्य चान्नं न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रगीयते ॥ ६५ ॥

जो कन्या एकको देकर फिर दूसरेको दीगई हो उसका अन्न भी भोजन करना उचित नहीं, कारण कि यह कन्या पुनर्भू नामसे पुकारी गई है ॥ ६५ ॥

पूर्वस्य श्रावितो यश्च गर्भो यश्चाप्यसंस्कृतः ॥
द्वितीये गर्भसंस्कारस्तेन शुद्धिर्विधीयते ॥ ६६ ॥
राजाद्यैर्देशभिर्मासैर्यावत्तिष्ठति गुर्विणी ॥
तावद्रक्षा विधातव्या पुनरन्यो विधीयते ॥ ६७ ॥

यदि किसी स्त्रीको अन्यसे गर्भ रह गया है ऐसा सुना जाय तो उस गर्भके संस्कार नहीं करै और फिर दूसरे गर्भाधानके समयमें संस्कार करनेसे उस स्त्रीकी शुद्धि होती है॥ ६६ ॥ जबतक वह स्त्री गर्भवती रहे तबतक उस स्त्रीकी शुद्धि नहीं इस वास्ते उसके हाथ दैविक-कार्यका उपयोग नहीं ले,परन्तु पुनः वह अपने पतिसे गर्भिणी होके उसके गर्भसंस्कार किये जायँ तबतक उसकी रक्षा करनी फिर अन्य गर्भ होता है तब वह शुद्ध होती है ॥ ६७ ॥

भर्तृशासनमुल्लंघ्य या च स्त्री विप्रवर्तते ॥
तस्याश्चैव न भोक्तव्यं विज्ञेया कामचारिणी ॥ ६८ ॥

जो स्त्री पतिकी आज्ञा उल्लंघन करके वर्ताव करती है उसके यहांका अन्न भी भोजन करना उचित नहीं और उस स्त्रीको कामचारिणी जानना ॥ ६८ ॥

Ashtadash Smrit...

यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रस्य संभवः ॥ ९ ॥
शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥
स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण एक महीनेतक बराबर शूद्रके यहांके अन्नको खाते हैं वे इस जन्ममें ही शूद्र हो जाते हैं ओर मरनेके पीछे उनको कुत्तेकी योनि मिलती है ॥ ६ ॥ शूद्रके यहांका अन्न भोजन, शूद्रके साथ एक आसन पर बैठना, शूद्रसे विद्या पढना, यह सम्पूर्ण कार्य तेजस्वी पुरुषको भी पतित करते हैं ॥ ७ ॥ जो ब्राह्मण नित्य होमके लिये अग्नि स्थापन करता है

वह यदि शूद्रके यहां अन्न भोजन करना न छोडे तो उसका आत्मा, वेद और तीनों अग्नि नष्ट होजाते हैं ॥ ८ ॥ शूद्रके अन्नको भोजन कर जो स्त्रीसंग करके उससे पुत्रादि उ करता है वह पुत्र शूद्रके ही हैं, कारण कि अन्नसे ही शुक्र उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ अन्न पेटमें रहते हुए जो ब्राह्मण मर जाता है,वह उस जन्ममें गाँवका सूकर होता है अथवा उस शूद्रके ही कुलमें उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

160

ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि ॥
वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोंका अन्न सर्वदा भोजन करने योग्य है; पर्वके समयमें क्षत्रियोंका अन्न भोजन करे, यज्ञकर्ममें दीक्षित होनेपर वैश्यका अन्न भोजन करे और शूद्रका अन्न किसी समयमें भोजन करना उचित नहीं ॥ ११ ॥

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम् ॥
वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥ १२ ॥
वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥
अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥ १३ ॥
व्यवहारानुरूपेण धर्मेण च्छलवर्जितम् ॥
क्षत्रियस्य पयस्तेन भूतानां यच्च पालनम् ॥ १४ ॥
स्वकर्मणा च वृषभैरनुसृत्याद्य शक्तितः ॥
खलयज्ञातिथित्वेन वैश्यान्नं तेन संस्कृतम् ॥ १५ ॥
अज्ञानतिमिरांधस्य मद्यपानरतस्य च ॥
रुधिरं तेन शूद्रान्नं विधिमंत्रविवर्जितम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणका अन्न अमृतके समान है, क्षत्रियका अन्न दूधके समान है, वैश्यका अन्न अन्न मात्र है और शूद्रका अन्न रुधिरके समान है ॥ १२ ॥ वैश्वदेवके निमित्त दान, होम, देवताओंकी पूजा और जपसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मंत्रोंसे शुद्ध हुए ब्राह्मणका अन्न अमृतके समान है ॥ १३ ॥ व्यवहारके अनुकूल धर्मसे छलना रहित क्षत्रियका अन्न प्राणियोंका पालन करता है, इस निमित्त क्षत्रियका अन्न दूधके समान है ॥ १४ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार अपने कर्मसे,पशुओंकी रक्षासे और खरियानके यज्ञ व आतिथ्यसे शुद्धिको प्राप्त हुआ वैश्यका अन्न अन्न ही है ॥ १५ ॥ अज्ञानरूपी अंधकारसे अंधे हुए और मदिरा पीनेमें तत्पर शूद्रोंका अन्न विधि और मंत्रोंसे रहित है इसी कारण उसको रुधिरके समान जाने ॥ १६ ॥

आममांसं मधु घृतं धानाः क्षीरं तथैव च ॥
गुडस्तक्रं रसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः ॥ १७ ॥

कच्चा मांस, सहत, घी, अन्न और दूध, गुड, मट्ठा, रस, यह सब वस्तुएँ शूद्रके घरकी होनेपर भी मनुष्यको ले लेनेमें दोष नहीं है ॥ १७ ॥

ब्राह्मणस्य सदा काले शूद्रे प्रेषणकारिणि ॥
भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणकी आज्ञाको पालन करनेवाले शूद्रको पृथ्वीपर ही अन्न खानेके लिये देना उचित है, कारण कि जिस भाँति कुत्ता है वैसा ही यह भी है ॥ ३४ ॥

अनुदकेष्वरण्येषु चोरव्याघ्राकुले पथि ॥
कृत्वा मूत्रं पुरीषं च द्रव्यहस्तः कथं शुचिः ॥ ३५ ॥
भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथार्थतः ॥
उत्संगे गृह्य पक्वान्नमुपस्पृश्य ततः शुचिः ॥ ३६ ॥

मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः ॥
मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु गव्यं पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३७ ॥

(प्रश्न) जलहीन स्थानोंमें, वनमें, चोर और सिंह जिसमें हों उन मार्गोंमें भोजन हाथमें लियेहुए जो मनुष्य मल मूत्र त्याग करता है और उस वस्तुको खालेता है उसकी शुद्धि किस प्रकार होती है ? ॥ ३५ ॥ (उत्तर) वह मनुष्य पृथ्वीपर अन्नको रखकर और यथार्थ शौच करके गोदीमें पक्वान्न लेकर आचमन करनेसें शुद्ध होता है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मूत्र करके विना शौच किये हुए अज्ञानसे भोजन करलेता है वह तीन रात तक भलीभांति पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ ३७ ॥

उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः ॥
चांद्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥ ३८ ॥

मदसे मोहित हुआ ब्राह्मण यदि रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करले तो चांद्रायण व्रत करे और बहुतसे ब्राह्मणोंके भोजन करानेसे शुद्ध होता है ॥ ३८ ॥

भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥
प्रमादाद्यदि संस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ ३९ ॥
स्नात्वा त्रिषवणं नित्यं ब्रह्मचारी धराशयः ॥
स त्रिरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४० ॥

भोजनके उपरान्त विना ही आचमन किये उच्छिष्ट अवस्थामें यदि ब्राह्मणको अज्ञानसे श्वपच या चांडल छूले ॥ ३९ ॥ तो त्रिकाल स्नान और ब्रह्मचारी हो नित्य पृथ्वीपर शयन करता हो तो वह तीन रात्रि उपवास करे पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ ४० ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टो यश्चापः पिबति द्विजः ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा त्रिषवणेन शुद्ध्यति ॥ ४१ ॥
सायंप्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्य तं विदुः ॥
सायं प्रातस्तथैवैकं दिनद्वयमयाचितम् ॥ ४२ ॥

दिनद्वयं च नाश्नीयात्कृच्छ्रार्द्धं तद्विधीयते ।

Ashtadash Smrit...

गलेमें जनेऊकी तरह पहराते हैं सो भूलसे, कारण कि "कटिप्रदेशे त्रिवृताम्" इस गृह्यसूत्रमें कौंधनी करके ही उसका पहरना लिखा है; भूलका कारण यज्ञोपवीतके समान होना ही है।

शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्धयति ॥ ३१ ॥

जो कभी भी शूद्रके हाथसे भोजन करता है, या उसके हाथसे पानी पीता है; उसकी शुद्धि अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे होती है॥ २९॥ बासी, उच्छिष्ट और जिसमें बालआदि पडे हों ऐसे अन्नको खानेवाला मनुष्य अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ ३० ॥ जिसने शूद्रके यहांके बरतनमें अथवा टूटेहुए बरतनमें भोजन किया है उसकी शुद्धि अहोरात्र उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे होती है ॥ ३१ ॥

दिवा स्वपिति यः स्वस्थो ब्रह्मचारी कथंचन ॥
स्नात्वा सूर्यं समीक्षेत गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ३२ ॥

कदाचित् ब्रह्मचारी दिनके समयमें सो जाय तो स्नान करनेके उपरांत सूर्यदेवका दर्शन कर आठसौ गायत्रीके जपनेसे शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥

एष धर्मः समाख्यातः प्रथमाश्रमवासिनाम् ॥
एवं संवर्तमानस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ३३ ॥

प्रथमआश्रमवासियोंका (ब्रह्मचारियोंका) यह धर्म कहा गया, जो इसके अनुसार वर्ताव करता है वह परम गतिको पाता है ॥ ३३ ॥

अतो द्विजः समावृत्तः सवर्णां स्त्रियमुद्वहेत् ॥
कुले महति संभूतां लक्षणैस्तु समन्विताम् ॥ ३४ ॥
ब्राह्मेणैव विवाहेन शीलरूपगुणान्विताम् ॥

जो ब्राह्मण इस ब्रह्मचर्य आश्रमसे विमुख होगया हो वह ऐसी स्त्रीके साथ अपना विवाह करे जो अपने वर्णकी और अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई हो; और शुभ लक्षणवाली हो ॥ ३४ ॥ और रूप, शील, गुण यह भी सम्पूर्ण लक्षण उसमें विद्यमान हों ऐसी स्त्रीके साथ ब्राह्म[1]-विवाह करे;

अतः पंचमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजः ॥ ३५ ॥
न हापयेत्तु ताञ्छक्तः श्रेयस्कामः कदाचन ॥
हानिं तेषां तु कुर्वीत सदा मरणजन्मनोः ॥ ३६ ॥

इसके उपरांत ब्राह्मण प्रतिदिन पंच महायज्ञ करे ॥ ३५ ॥ कल्याणकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण उनका त्याग कभी न करे, परन्तु जिस समय जन्म मरणका सूतक होजाय उस समय उनको न करे ॥ ३६ ॥

१ उत्तम वस्त्र और आभूषण पहनाकर विद्वान् और सुशील लडकेको बुलाकर जो कन्या दी जाती है उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं।

174

विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः ॥
क्षत्रियो द्वादशाहानि वैश्यः पञ्चदशैव तु ॥ ३७ ॥
शूद्रः शुद्धयति मासेन संवर्तवचनं यथा ॥
प्रेतायान्नं जलं देयं स्नात्वा तद्गोत्रजैः सह ॥ ३८ ॥

Ashtadash Smrit...

गलेमें जनेऊकी तरह पहराने हैं सो भूलसे, कारण कि "कटिप्रदेशे त्रिवृताम्" इस गृह्यसूत्रमें कौंधनी करके ही उसका पहरना लिखा है: भूलका कारण यज्ञोपवीतके समान होना ही है।

शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३१ ॥

जो कभी भी शूद्रके हाथसे भोजन करता है, या उसके हाथसे पानी पीता है; उसकी शुद्धि अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे होती है ॥ २९ ॥ बासी, उच्छिष्ट और जिसमें बालआदि पडे हों ऐसे अन्नको खानेवाला मनुष्य अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ ३० ॥ जिसने शूद्रके यहांके बरतनमें अथवा टूटेहुए बरतनमें भोजन किया है उसकी शुद्धि अहोरात्र उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे होती है ॥ ३१ ॥

174

दिवा स्वपिति यः स्वस्थो ब्रह्मचारी कथंचन ॥
स्नात्वा सूर्यं समीक्षेत गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ३२ ॥

कदाचित् ब्रह्मचारी दिनके समयमें सो जाय तो स्नान करनेके उपरांत सूर्यदेवका दर्शन कर आठसो गायत्रीके जपनेसे शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥

एष धर्मः समाख्यातः प्रथमाश्रमवासिनाम् ॥
एवं संवर्तमानस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ३३ ॥

प्रथमआश्रमवासियोंका (ब्रह्मचारियोंका) यह धर्म कहा गया, जो इसके अनुसार वर्ताव करता है वह परम गतिको पाता है ॥ ३३ ॥

अतो द्विजः समावृत्तः सवर्णां स्त्रियमुद्वहेत् ॥
कुले महति संभूतां लक्षणैस्तु समन्विताम् ॥ ३४ ॥
ब्राह्मेणैव विवाहेन शीलरूपगुणान्विताम् ॥

जो ब्राह्मण इस ब्रह्मचर्य आश्रमसे विमुख होगया हो वह ऐसी स्त्रीके साथ अपना विवाह करे जो अपने वर्णकी और अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई हो; और शुभ लक्षणवाली हो ॥ ३४ ॥ और रूप, शील, गुण यह भी सम्पूर्ण लक्षण उसमें विद्यमान हों ऐसी स्त्रीके साथ ब्राह्म-विवाह करे;

अतः पंचमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजः ॥ ३५ ॥
न हापयेत्तु ताञ्छक्तः श्रेयस्कामः कदाचन ॥
हानिं तेषां तु कुर्वीत सदा मरणजन्मनोः ॥ ३६ ॥

इसके उपरांत ब्राह्मण प्रतिदिन पंच महायज्ञ करे ॥ ३५ ॥ कल्याणकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण उनका त्याग कभी न करे, परन्तु जिस समय जन्म मरणका सूतक होजाय उस समय उनको न करे ॥ ३६ ॥

१ उत्तम वस्त्र और आभूषण पहनाकर विद्वान् और सुशील लडकेको बुलाकर जो कन्या दी जाती है उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं।

विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः ॥
क्षत्रियो द्वादशाहानि वैश्यः पञ्चदशैव तु ॥ ३७ ॥

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ॥
दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥
त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ६७ ॥
तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ॥
विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य भूषण वस्त्रादि पहराकर भली भांतिसे पूजित हुई कन्याको योग्य वरके हाथमें ब्राह्म विवाहकी रीतिके अनुसार देता है ॥ ६१ ॥ वह कन्याके दान करनेसे महाकल्याणको प्राप्त होता है और सज्जनोंमें बडाई पाकर उत्तम कीर्तिमान् होता है ॥ ६२ ॥ होमके मंत्रोंसे संस्कार की हुई कन्याके दान करनेपर मनुष्य दश सहस्र ज्योतिष्टोम और अतिरात्र फलको प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ वस्त्र, अलंकारोसे जो मनुष्य कन्याकी पूजा, उत्स वृद्धि (पुत्रादिके जन्मसमयमें) करता है वह स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ (अविवाहित कन्याके) रोमोंके निकल आनेके समयमें कन्याको चंद्रमा भोग करता है और ऋतुमती होनेके समयमें गंधर्व भोगते हैं, दोनों स्तनोंके ऊंचे होनेपर अग्नि भोगता है ॥ ६५ ॥ आठ वर्षतक कन्या गौरी है,नवमे वर्षमें रोहिणी और दसवर्षमें कन्याको कन्या कहा है,इसके उपरान्त कन्याकी संज्ञा रजस्वला हो जाती है ॥ ६६॥ कन्याको ऋतुमती हुआ देखकर बडा भाई, माता,पित यह तीनों नरकमें जाते हैं ॥ ६७ ॥ इस कारण रजोदर्शनके विना हुए ही कन्याका विवाह करना श्रेष्ठ है और आठ वर्षकी कन्याका विवाह करना परम श्रेष्ठ है ॥ ६८ ॥

तैलामलकदाता च स्नानाभ्यंगप्रदायकः ॥
नरः प्रहृष्टश्चासीत सुभगश्चोपजायते ॥ ६९ ॥

तैल, आंवले, स्नानके निमित्त जल, और उबटन इनका दान जो मनुष्य करता है वह सर्वदा आनन्दित होकर भाग्यवान् होता है ॥ ६९ ॥

अनड्वाहौ तु यो दद्याद्द्विजे सीरेण संयुतौ ॥
अलंकृत्य यथाशक्ति धूर्वहौ शुभलक्षणौ ॥ ७० ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः ॥
वर्षाणि वसते स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य उत्तम लक्षणवाले, जोतने योग्य दो बैलोंको अलंकृत कर हलके साथ ब्राह्मणको देता है ॥ ७० ॥ वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर सब कामनाओंके साथ जितने रोम बैलोंके शरीर-पर हैं उतने ही वर्षोंतक स्वर्गमें वास करता है ॥ ७१ ॥

धेनुं च यो द्विजे दद्यादलंकृत्य पयस्विनीम् ॥
कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स्वर्गलोके महीयते ॥ ७२ ॥

काँसीके पात्र और वस्त्रोंसे अलंकृत कर दूध देनेवाली गौको जो मनुष्य ब्राह्मणको दान करता है, वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है ॥ ७२ ॥

भूमिं सस्यवतीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे ॥

Ashtadash Smrit...

एवं शुद्धः समाख्याता संवर्तस्य वचो यथा ॥ १६८ ॥

जो ब्राह्मण कामदेवसे मोहित हो चांडालीके संग गमन करता है वह क्रमानुसार प्राजापत्य आदि तीन कृच्छ्रोंके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १५२ ॥ जो मनुष्य जानकर या विना जानेहुए व्यभिचारिणी स्त्रीके संग संयोग करता है वह कृच्छ्र और चांद्रायण इन दोनोंके

भलीभांति करनेसे शुद्ध होता है ॥ १५३ ॥ जो ब्राह्मण मोहित होकर नटनी, धोबिन, बांस और चमडेसे जीविका करनेवाली स्त्रियोंके संग गमन करता है वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १५४ ॥ जो ब्राह्मण क्षत्रियकी अथवा वैश्यकी स्त्रीके संग कामदेवसे मोहित होकर गमन करता है वह सांतपन कृच्छ्रके करनेसे उसके पापसे छूट सकता है ॥ १५५ ॥ जो मनुष्य एक महीने अथवा पंद्रह दिनतक शूद्रकी स्त्रीके साथ गमन करता है वह पंद्रह दिनतक गोमूत्र और जौको खानेसे शुद्ध होता है ॥ १५६ ॥ जो मनुष्य अन्य कुटुम्बकी ब्राह्मणीके साथ गमन करता है वह प्राजापत्यके करनेसे शुद्ध होता है; अपने कुटुम्बकी स्त्रीके साथ गमन करनेवाला ब्राह्मण प्राजापत्यके करनेसे ही शुद्ध होता ॥ १५७ ॥ क्षत्रिय क्षत्रिया स्त्रीके साथ गमन करनेसे प्राजापत्यके करनेसे शुद्ध होता है; जो मनुष्य गौके साथ गमन करता है वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १५८ ॥ मामाकी स्त्री "(मांई), सास, मामाकी पुत्री जो मनुष्य अज्ञानसे इनके साथ गमन करता है वह पराक व्रतके करनेसे भली भांति शुद्ध होता है ॥ १५९ ॥ जो मनुष्य गुरुकी पुत्री, बुआके साथ और बुआकी बेटीके साथ गमन करता है वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १६० ॥ चाचा और भाईकी बहूके साथ गमन करनेवाला मनुष्य गुरुकी स्त्रीके साथ गमनका प्रायश्चित्त करे ॥ इसके अतिरिक्त उसके पापकी निवृत्ति नहीं होती ॥ १६१ ॥ माताके अतिरिक्त पिताकी अन्य स्त्री और माताकी शीलवती बहिन और दूसरी मातामें उत्पन्न हुई सौतेली बहिन॥१६२॥इन तीनों स्त्रियोंके साथ जो मनुष्योंमें नीच मनुष्य गमन करता है वह तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होता है; और कुमारी (विना विवाही हुई) के साथ गमन करनेवाला मनुष्य इसी तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १६३ ॥ जो मनुष्य पशु और वेश्याके साथ गमन करता है वह प्राजापत्य करनेसे शुद्ध होता है, मित्रकी स्त्री, सास, सालेकी स्त्री ॥ १६४ ॥ माता, बहन और अपनी लडकी, जो मनुष्योंमें नीच मनुष्य इनके साथ गमन करता है उसका प्रायश्चित्त ही नहीं है॥१६५॥जो ब्राह्मण नियम व्रतमें स्थित हुई स्त्रीके साथ गमन करता है वह प्राकृत कृच्छ्रके करनेसे और दूध देतीहुई गौके दान करनेसे शुद्ध होता है ॥ १६६ ॥ जो मनुष्य रजस्वला, गर्भवती और पतित स्त्रीके साथ गमन करता है वह अतिकृच्छ्रके करनेसे अपने पापसे मुक्त होता है ॥ १६७ ॥ वैश्यकी कन्याके साथ गमन करनेवाला ब्राह्मण एक कृच्छ्रके करनेसे संवर्त्त मुनिके वचनके अनुसार शुद्ध होता है॥१६८॥

कथंचिद्ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १६९ ॥

कदाचित् क्षत्रिय और वैश्य यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करें तो एक महीनेतक गोमूत्र और जौके खानेसे शुद्ध होते हैं ॥ १६९ ॥

शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गच्छेत्कदाचित्काममोहितः ॥

गोविप्रमहते चैव तथा चैवात्मघातिनि ॥
नैवाश्रुपतनं कार्यं सद्भिः श्रेयोऽभिकांक्षिभिः ॥ १७६ ॥

जो मनुष्य गौ और ब्राह्मणसे मरा हो या जो आत्मघातसे मरा हो इनके मर जानेपर अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुष न रोवें ॥ १७६ ॥

एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ॥
कृत्वा चोदकदानं तु चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥ १७७ ॥
तच्छवं केवलं स्पृष्ट्वा अश्रु नो पातितं यदि ॥ १७८ ॥
पूर्वकेष्वप्यकारी चेदेकाहं क्षपणं तथा ॥
महापातकिनां चैव तथा चैवात्मघातिनाम् ॥ १७९ ॥
उदकं पिंडदानं च श्राद्धं चैव हि यत्कृतम् ॥
नोपतिष्ठति तत्सर्वं राक्षसैर्विप्रलुप्यते ॥ १८० ॥

और यदि कोई मनुष्य प्रेमके वश हो कर श्मशानमें प्रेतको ले जाय अथवा जला दे तो वह जलदान करके चांद्रायण व्रत करे ॥ १७७ ॥ और केवल इन्ही शवोंका स्पर्श करे जिनको कोई न रोया हो ॥ १७८ ॥ और यदि पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करनेमें असमर्थ हो तो एक दिन उपवास करे, महापातकी और आत्मघाती ॥१७९ ॥ इन मनुष्योंको जो जलदान, पिंडदान और श्राद्ध किया जाता है वह सब इनको नहीं मिलता, वरन् उसे राक्षस नष्ट कर देते हैं ॥ १८० ॥

चण्डालैस्तु हता ये च द्विजा दंष्ट्रिसरीसृपैः ॥
श्राद्धं तेषां न कर्तव्यं ब्रह्मदण्डहताश्च ये ॥ १८१ ॥
कृत्वा मूत्रपुरीषे तु भुक्त्वोच्छिष्टस्तथा द्विजः ॥
श्वादिस्पृष्टो जपेद्देव्याः सहस्रं स्नानपूर्वकम् ॥ १८२ ॥

जो ब्राह्मण चाण्डालोंके मारनेसे मरा हो या जो सर्पके काटनेसे मरा हो अथवा जो ब्राह्मणके शापसे मरा हो उसके लिये श्राद्ध करना उचित नहीं ॥ १८१ ॥ यदि भोजनसे उच्छिष्ट ब्राह्मणको और जिसने लघुशंका और मलका त्याग किया हो उसको कुत्ता आदि छू जायं तो वह स्नान कर एक हजार वार गायत्रीका जप करे ॥ १८२ ॥

चंडालं पतितं स्पृष्ट्वा शवमंत्यजमेव च ॥
उदक्यां सूतिकां नारीं सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १८३ ॥

जो मनुष्य चांडाल, पतित, शव, अंत्यज, रजस्वला और सूतिका स्त्रीका स्पर्श करता है वह वस्त्रोंसहित स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ १८३ ॥

स्पृष्टेन संस्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ॥
ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥१८४ ॥

इनके स्पर्श करनेवालेने यदि जिसका स्पर्श किया हो वह स्नान ही करके फिर आचमन करे और सम्पूर्ण वस्त्रादिकोंको जलसे छिडक दे ॥ १८४ ॥

चंडालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टश्चेद्द्विजोत्तमः ॥
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८५ ॥

बासी अन्न, बाल पड़े हों अथवा जिसे पतितोंने देखा हो उस अन्नको खाने वाला ब्राह्मण पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ १९७ ॥

अंत्यजाभाजने भुक्त्वा उदक्याभाजने तथा ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ १९८ ॥

जो मनुष्य अंत्यज स्त्रीके या रजस्वलाके पात्रमें खाता है वह गोमूत्र और जौके खानेसे पंद्रह दिनमें शुद्ध होता है ॥ १९८ ॥

गोमांसं मानुषं चैव शुनो हस्तात्समाहृतम् ॥
अभक्ष्यं तद्भवेत्सर्वं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १९९ ॥

जो मनुष्य गौका मांस और मनुष्यका मांस तथा कुत्तेके द्वारा आयेहुए ऐसे अभक्षणीय मांसको खाता है वह चांद्रायणके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९९ ॥

चंडाले संकरे विप्रः श्वपाके पुल्कसेऽपि वा ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०० ॥

जो मनुष्य चांडाल, वर्णसंकर, श्वपाक और पुल्कस इनके यहांका भोजन करता है उसकी शुद्धि पंद्रह दिनमें होती है ॥ २०० ॥

पतितेन तु संपर्कं मासं मासार्द्धमेव वा ॥
गोमूत्रयावकाहारान्मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०१ ॥

जो मनुष्य पंद्रह दिन या एक महीनेतक पतितका संसर्ग करे तो गोमूत्र और जौको खाकर उसकी शुद्धि पंद्रह दिनमें होती है ॥ २०१ ॥

पतिताद्द्रव्यमादत्ते भुंक्ते वा ब्राह्मणो यदि ॥
कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥ २०२ ॥

पतितके द्रव्यको जो ब्राह्मण लेता है अथवा उसके यहां जो भोजन खाता है वह उनका दान व वमन करके अतिकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होता है ॥ २०२ ॥

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या प्रत्यहं द्विजः ॥ २०३ ॥
एष एव मया प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥

ब्राह्मण जिन २ कर्मोंमें अपनेको पतित विचारे वह उन्हीं २ कर्मोंमें गायत्री और तिलोंसे प्रतिदिन हवन करता रहे ॥ २०३ ॥ मैंने यह प्रायश्चित्तकी उत्तम विधि सुनाई.

अनादिष्टेषु पापेषु प्रायश्चित्तं न चोच्यते ॥ २०४ ॥

अब जो पाप शास्त्रमें नहीं कहे हैं उनका प्रायश्चित्त भी नहीं कहा है ॥ २०४ ॥

दानैर्होमैर्जपैर्नित्यं प्राणायामैर्द्विजोत्तमः ॥
पातकेभ्यः प्रमुच्येत वेदाभ्यासान्न संशयः ॥ २०५ ॥
सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ॥
नाशयन्त्याशु पापानि ह्यन्यजन्मकृतान्यपि ॥ २०६ ॥
तिलं धेनुं च यो दद्यात्संयताय द्विजातये ॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २०७ ॥

ब्राह्मण दान, हवन, जप, प्राणायाम और वेदपाठ इनके करनेसे सर्वदा पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥२०५॥ सुवर्ण, गौ, पृथ्वी, इनके दान करनेसे दूसरे जन्मके किये हुए पाप भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ २०६ ॥ जो मनुष्य जितेन्द्रिय ब्राह्मणको तिल वा गौ दान करता है

गायत्रीं यस्तु विप्रो वै जपेत नियतः सदा ॥
स याति परमं स्थानं वायुभूतः स्वमूर्तिमान् ॥ २२४ ॥

मनुष्य वनमें जाकर सम्पूर्ण पापोंकी शुद्धिके लिये वेदों की माता और पवित्र गायत्रीका जप नदीके किनारेपर करे ॥ २१६ ॥ ब्राह्मण स्नान और आचमन करके प्राणोंको स्थिर करे, पहले तीन प्राणायाम करके पवित्र हो गायत्रीका जप करे ॥ २१७ ॥ गीले वस्त्रोंको न पहरे और पवित्र स्थानमें बैठे, इसके पीछे सावधान होकर कुशाओंकी पवित्री पहन कर आचमनके उपरान्त गायत्रीको जपे ॥२१८॥ जो मनुष्य पांच रात्रियों तक बराबर गायत्रीको जपता रहता है उसकेइस जन्म और दूसरे जन्मके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जातेहैं ॥ २१९ ॥ गायत्रीसे परे पापियोंकी शुद्धि नहीं है;इसी कारण महाव्याहृति और ॐकारके साथ गायत्रीका जप करता रहे ॥ २२० ॥ जो ब्रह्मचारी भोजनको त्याग कर सबके कल्याणके हितके निमित्त गायत्रीको एक लाख जपता है वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ २२१ ॥ जो मनुष्य यज्ञ करानेके अयोग्य पुरुषको यज्ञ कराता है अथवा जो निन्दित अन्नको खाता है उसकी शुद्धि आठ हजार गायत्रीके जप करनेसे होती है ॥ २२२ ॥ जो ब्राह्मण प्रतिदिन गायत्रीका जप करता रहता है वह पापोंसे साँपसे छोडी हुई केंचलीके समान छूट जाता है ॥ २२३॥ जो ब्राह्मण जितेन्द्रिय होकर सर्वदा गायत्रीका जप करता है वह वायु और आकाशरूप हो वैकुण्ठको जाता है ॥ २२४ ॥

प्रणवेन च संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः ॥
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं मनसा त्रिः पिबेद्द्विजः ॥ २२५ ॥
निगृह्य चात्मनः प्राणान्प्राणायामो विधीयते ॥
प्राणायामत्रयं कुर्यान्नित्यमेव समाहितः ॥ २२६ ॥
मानसं वाचिकं पापं कायेनैव च यत्कृतम् ॥
तत्सर्वं नाशमायाति प्राणायामप्रभावतः ॥ २२७ ॥

ब्राह्मण ॐकार सहित सात व्याहृति और शिरस मंत्रके साथ गायत्रीको तीनवार सर्वदा पढे वायु पीवे ॥ २२५ ॥ प्राणोंको वशमें करनेहीका नाम प्राणायाम है, इसकारण मनुष्य

सावधान होकर प्रतिदिन तीन प्राणायाम करे ॥ २२६ ॥ मन, वाणी और देहसे किये हुए सम्पूर्ण पाप प्राणायामके प्रभावसे नष्ट हो जाते हैं ॥ २२७ ॥

ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजुःशाखामथापि वा ॥
सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२८ ॥
पावमानीं तथा कौत्सीं पौरुषं सूक्तमेव च ॥
जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत पित्र्यं माधुच्छंदसम् ॥ २२९ ॥
मंडलं ब्राह्मणं रुद्रसूक्तोक्ताश्च बृहद्यथा ॥
वामदेव्यं बृहत्साम सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३० ॥

जो मनुष्य ऋग्वेद, यजुर्वेदकी शाखा और रहस्यसहित सामवेदका पाठ करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ २२८ ॥ जो मनुष्य पावमानी और कौत्सी ऋचा, पुरुषसूक्त, पितरोंके मंत्र, माधुच्छंदस मंत्र इनका जप करताहै वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २२९ ॥ मंडल ब्राह्मण, रुद्रसूक्तकी ऋचा, बृहत् वामदेवके बृहत्सामवेदका जप करनेवाला मनुष्य भी सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ २३० ॥

चांद्रायणं तु सर्वेषां पापानां पावनं परम् ॥
कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परमं स्थानमेव च ॥ २३१ ॥
धर्मशास्त्रमिदं पुण्यं संवर्तेन तु भाषितम् ॥
अधीत्य ब्राह्मणो गच्छेद्ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥ २३२ ॥
इति संवर्तप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे पवित्र करनेवाले उत्तम चांद्रायणव्रतको करता है उसको उत्तम स्थान प्राप्त होताहै ॥ २३१ ॥ जो ब्राह्मण संवर्त ऋषिके कहे हुए इस धर्मशास्त्रको पढता है वह सनातन ब्रह्मलोकमें जाता है ॥ २३२ ॥

इति संवर्तस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ।

इति संवर्त्तस्मृतिः समाप्ता ॥ ८ ॥

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ॥
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनग्निदूषिताः ॥ १३ ॥

ब्राह्मणका केशों तक, क्षत्रियका मस्तक तक, नासिका तक वैश्यका दंड प्रमाणसे होता है॥ ॥ १२ ॥ और वह दंड ऐसे हों कि सीधे, देखनेमें अच्छे, वकले सहित तथा अग्नि से दुषित और घुने न हों और मनुष्योंको डरानेवाले न हों ॥ १३ ॥

गौर्विशिष्टतमा विप्रैर्वेदेष्वपि निगद्यते ॥
न ततोऽन्यद्वरं यस्मात्तस्माद्गौर्वर उच्यते ॥ १४ ॥
येषां व्रतानामन्तेषु दक्षिणा न विधीयते ॥
वरस्तत्र भवेद्दानमपि वाऽऽच्छादयेद्गुरुम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मणोंने गौको वेदोंमें भी उत्तम कहा है; इसी कारण गौसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है; इसी से गौको वर कहते हैं ॥ १४ ॥ जिन वर्तोंके अंतमें दक्षिणा नहीं कही है वहां वर (गौ) दक्षिणा दे, अथवा गुरुको वस्त्रोंसे ढक दे ॥ १५ ॥

अस्थानोच्छ्वासविच्छेदघोषणाध्यापनादिकम् ॥
प्रमादिकं श्रुतौ यत्स्यायातयामत्वकारि तत् ॥ १६ ॥
प्रत्यब्दं यदुपाकर्म्म सोत्सर्गं विधिवद्द्विजैः ॥
क्रियते छन्दसां तेन पुनराप्यायनं भवेत् ॥ १७ ॥
अयातयामैश्छन्दोभिर्यत्कर्म्म क्रियते द्विजैः ॥
क्रीडमानैरपि सदा तत्तेषां सिद्धिकारकम् ॥ १८ ॥
गायत्रीश्च सगायत्रां बार्हस्पत्यमिति त्रिकम् ॥
शिष्येभ्योऽनूच्य विधिवदुपाकुर्य्यात्ततः श्रुतिम् ॥ १९ ॥

जिनमें वेद यातयाम (जिसमें सार न हो ऐसा)हो जाते हैं वह यह हैं कि अस्थान (जिस स्थानसे बोलना चाहिये उससे वर्णका नहीं बोलना), ऊँचे श्वाससे बोलना, विच्छेदसे बोलना, बडे शब्दसे बोलना, यदि यह प्रमादसे हो जाय तो सारहीन होता है ॥ १६ ॥ प्रतिवर्षमें जो उपाकर्म वा उत्सर्ग (जो श्रावणीमें होता है) इनको ब्राह्मण करते हैं, उससे फिर वेदों की आप्यायन (सारता) होती है॥ १७ ॥ ब्राह्मण जो कर्म क्रीडासहित अयातयामे वेदोंसे

करते हैं वह कर्म उनकी सिद्धि करनेवाले होते हैं ॥ १८॥ तीनों व्याहृतिसहित गायत्री और गायत्र (पवमानसूक्त) और बार्हस्पत्य (बृहस्पति का सूक्त) इन तीनोंको शास्त्रके अनुसार शिष्योंको उपदेश दे कर फिर वेदका उपाकर्म करे ॥१९॥

छन्दसामेकविंशानां संहितायां यथाक्रमम् ॥
तच्छन्दस्काभिरृग्भिराद्याभिर्होम इष्यते ॥ २० ॥
पर्वभिश्चैव गानेषु ब्राह्मणेषूत्तरादिभिः ॥
अङ्गेषु चर्चामन्त्रेषु इति षष्टिर्जुहातयः ॥ २१ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ सप्तविंशतितमः खण्डः ॥ २७ ॥

संहिता के क्रमसे इक्कीस प्रकारके छंद हैं, उन्हीं छंदोंकी ऋचाओंके मन्त्रोंसे होम करनेकी विधि है ॥ २० ॥ गानभाग (सामवेद), ब्राह्मण भाग, अंग और चर्चामन्त्रोंके उत्तरादि पर्वोंसे हवन करे, उपाकर्ममें यह छ हवन किये जाते हैं ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तविंशः खण्डः समाप्तः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः खंडः २८.

अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते ॥
भृष्टास्तु व्रीहयो लाजा घट खाण्डिक उच्यते ॥ १ ॥

जौका नाम अक्षत है व भुने हुए जौके होने पर उसे धाना कहते हैं और भुने व्रीहियोंको लाजा कहते हैं और घडोंका नाम खांडिक है ॥ १ ॥

नाधीयीत रहस्यानि सान्तराणि विचक्षणः ॥
न चोपनिषदश्चैव षण्मासान्दक्षिणायनात् ॥ २ ॥
उपाकृत्योदगयने ततोऽधीयीत धर्म्मवित् ।
उत्सर्गश्चैक एवैषां तैष्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा ॥ ३ ॥

लाभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् ॥
कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥ ७० ॥

ब्याज लेना, रत्नोंका क्रयविक्रय, गौका पालन, गौओंकी रक्षा और उनके बछडे आदिकोंको बेच कर जीविका करना, खेती और व्यापार यह वैश्यकी वृत्ति है ॥ ७० ॥

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते ॥
अन्यथा कुरुते किंचित्तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ॥ ७१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनोंकी सेवासे निर्वाह करना शूद्रका परम धर्म है, इसके अतिरिक्त करनेमें शूद्रका अधिकार नहीं है ॥ ७१ ॥

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः ॥
न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥ ७२ ॥

लवण, मधु, तेल, दही, मट्ठा और घृत दुग्धादि सम्पूर्ण रसोंके बेचनेका शूद्रको अधिकार है, ऐसा करनेसे शूद्रको दोष नहीं लगता ॥ ७२ ॥

विक्रीणन्मद्यमांसानि ह्यभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥
कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥ ७३ ॥
कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ॥
वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरकं ध्रुवम् ॥ ७४ ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

मदिरा और मांसको शूद्र न बेचे, अभक्ष्य वस्तुका भक्षण न करे और अगम्या स्त्रीके साथ गमन न करे, इन सम्पूर्ण कामोंके करनेसे शूद्र तत्काल पतित होता है ॥ ७३ ॥ कपिला गौका दूध पीनेसे, ब्राह्मणीके साथ गमन करनेसे तथा वेदके अक्षरका विचार करनेसे शूद्र निश्चय ही नरकको जाता है ॥ ७४ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे ॥
धर्मं साधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥ १ ॥
तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पाराशरवचो यथा ॥

इसके उपरान्त कलियुगमें गृहस्थके कर्म, आचार और यथाशक्ति चारों वर्ण तथा चारों आश्रमोंका मिश्रित धर्म ॥ १ ॥ जिस भांति पराशरजीने कहा है उसे वर्णन करते हैं ॥

षट्कर्मसहितो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत् ॥ २ ॥
क्षुधितं तृषितं श्रांतं बलीवर्दं न योजयेत् ॥
हीनांगं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥ ३ ॥
स्थिरांगं नीरुजं तृप्तं सुनर्दं षंढवर्जितम् ॥
वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ ४ ॥

षट्कर्ममें नियुक्त हुआ ब्राह्मण खेती करता हो ॥ २ ॥ वह क्षुधा तृषासे व्याकुल हुए बैलको हलमें न जोडे; और जो बैल अंगहीन हो, रोगी हो उसे भी हलमें न जोते; नपुंसक बैलको भी हलमें न जोते ॥ ३ ॥ जिसके अंग दृढ हों, रोमहीन, तृप्त, पुष्ट और नपुंसकतारहित ऐसे बैलको मध्याह्न तक जोत कर कार्य ले, अधिक कार्य न ले, इसके पीछे स्नानादिक करे ॥ ४ ॥

गृहस्थः प्रत्यहं कुर्यात्सूनादोषैर्न लिप्यते ॥

ओखली, चक्की, चूल्हा तथा जलसे भरेहुए पात्रोंके स्थान, बुहारी ॥ १३ ॥ इन पांचो वस्तुओंसे नित्य प्रति हिंसा होती है, यदि गृहस्थ नित्य नियमसे बलिवैश्वदेव और देवताक पूजन करता रहे; अतिथियोंको भिक्षा दे और भोजन करनेसे पहले रसोईमेंके सम्पूर्ण पदार्थोंको थोडा २ गोग्रास भी आदरसहित देता रहे तथा देवपितरोंके निमित्त भी सोलह ग्रासकी हंतकार निकाल कर सुपात्र ब्राह्मण तथा गौ आदिकको दे ॥ १४ ॥ तो उस गृहस्थको उपरोक्त हिंसाओंके दोष नहीं लगते ॥

वृक्षं छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान् ॥ १५ ॥
कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

खेती करनेसे वृक्षोंका छेदन और पृथ्वीका भेदन होता है और हलसे कृमि आदिक असंख्य जीव मरते हैं ॥ १५ ॥ इन पापोंसे मुक्त होनेके निमित्त खेती करने वालेको खलयज्ञ आदि अवश्य करने चाहिये ॥

यो न दद्याद्द्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ॥ १६ ॥
स चौरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥

जो खेती करने वाला मनुष्य अन्नके ढेरमेंसे प्रथम भाग सुपात्र ब्राह्मणको नहीं देता॥१६॥ वह चोर, पापी और ब्रह्महत्या करनेवालेके समान है ॥

राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानां चैकविंशकम् ॥ १७ ॥
विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

राजाको छठा भाग और देवताओंको इक्कीसवां भाग खेती करनेवालेको देना उचित है ॥ १७ ॥ और ब्राह्मणको तीसवां भाग दे तो वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥

क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा देवान्विप्रांश्च पूजयेत् ॥ १८ ॥
वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्कृषिवाणिज्यशिल्पकम् ॥

यदि खेती करने वाला क्षत्रिय हो तो वह भी इसी भांति करे, अर्थात् देवता ब्राह्मणादि भाग दे ॥ १८ ॥ वैश्य और शूद्र भी खेती वाणिज्य और शिल्प कर्मको करे ॥

विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजशुश्रूषयोज्झिताः ॥ १९ ॥
भवंत्यल्पायुषस्ते वै निरयं यांत्यसंशयम् ॥

जो शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनकी सेवाको छोड कर निषिद्ध कर्म करते हैं ॥ १९ ॥ उनकी अवस्था अल्प होती है और वह निःसन्देह नरकको जाते हैं ॥

चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥ २० ॥
इति पराशरीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

चारों वर्णोंका सनातन धर्म यही है ॥ २० ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ॥
दिनत्रयेण शुद्ध्यंति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥ १ ॥
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहकैः ॥
शूद्रः शुद्ध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥

इसके उपरान्त जन्ममरणके अशौचकी शुद्धि कहते हैं; मृतक आशौच में ब्राह्मण तीन दिनमें शुद्ध होता है ॥ १ ॥ बारह दिनमें क्षत्रिय शुद्ध होते हैं, वैश्य पंद्रह दिनसे शुद्ध होता है; और शूद्र एकमाससे शुद्ध होता है ॥ २ ॥

ललाटदेशे रुधिरं स्रवच्च यस्याहवे तु प्रविशेत वक्त्रम् ॥
तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम् ॥४०॥

जिसका शरीर रणस्थानमें शूल, मुद्गर और लाठी आदिकोंसे क्षत हुआ हो उस वीरको देवकन्या ले जाती हैं ॥ ३६ ॥ जिसकी संग्राममें मृत्यु होती है उस वीरको देखकर सहस्रों देवांगना "यह मेरा पति हो" ऐसा कहती हुई शीघ्र उसके पासको जाती हैं ॥ ३७ ॥ स्वर्गकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण अनेक यज्ञ और तप करके जिस भांति जिस स्थानको प्राप्त होतेहैं; उसी प्रकार उस स्थानको रणमें प्राण त्यागन करनेवाले वीर क्षणमात्रमें प्राप्त हो जाते हैं ॥३८॥ लक्ष्मीकी प्राप्ति रणमें विजय प्राप्त होनेसे होती है और देवांगनाओंकी प्राप्ति मृत्यु होनेसे होती है. फिर यदि यह शरीर युद्धमें प्राप्त हो जाय तो इसकी चिन्ता ही क्याहै कारण कि यह क्षणमें भंग होनेवाला है ॥ ३९ ॥ संग्रामभूमिमें जिस वीरपुरुषके मस्तकसे रुधिर बहकर मुखमें चला जाय,उसके निमित्त वह रुधिरका पान संग्रामरूपी यज्ञमें विधिपूर्वक सोमपान करनेके समान है इसमें संदेह नहीं ॥ ४० ॥

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहंति द्विजातयः ॥
पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्व्याल्लभंति ते ॥ ४१ ॥
न तेषामशुभं किंचित्पापं वा शुभकर्मणाम् ॥
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४२ ॥
असगोत्रमबंधुं च प्रेतीभूतं द्विजोत्तमम् ॥
वाहित्वा च दहित्वा च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४३ ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ॥
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति॥ ४४ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अनाथ ब्राह्मणके मर जाने पर उसे अपने कंधेपर ले जाते हैं; उनको एक २ पग पर एक २ यज्ञका फल मिलता है ॥४१॥ जो मनुष्य मृतक हुए अनाथ ब्राह्मणको अपने कंधे पर रख कर श्मशानमें ले जातेहै उन श्रेष्ठ कर्म करनेवाले मनुष्योंको कुछ पाप या अमंगल नहीं होता, केवल जलमें स्नान करनेसे ही उनकी शुद्धि हो जाती है॥४२॥ अपने गोत्रसे पृथक् श्रेष्ठ ब्राह्मणके मर जानेपर जो उसे कंधेपर ले जाकर दाह करते हैं उनकी शुद्धि केवल प्राणायामसे ही हो जाती है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य अपनी इच्छानुसार मृतक मनुष्यके पीछे जाय वह अपनी जातिका हो या अन्य जातिका हो तो उसके पीछे जानेसे वस्त्र सहित स्नान कर अग्निका स्पर्श कर घृतके चाखनेसे ही उसकी शुद्धि होती है ॥ ४४ ॥

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ॥
एकाहमशुचिर्भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४५ ॥

जो ब्राह्मण अज्ञानतासे क्षत्रियके मृतक शरीरके पीछे जाय, तो उसको एक दिन अशौच रहता हैं और पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ४५ ॥

शवं च वैश्यमज्ञानाद्ब्राह्मणो ह्यनुगच्छति ॥
कृत्वा शौचं द्विरात्रं च प्राणायामान्षडाचरेत् ॥ ४६ ॥

वैश्यके पीछे अज्ञानतासे जाने पर तीन रात अशौच रहता है और छ प्राणायाम करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ४६ ॥

प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥
अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ४७ ॥
त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४८ ॥

जो अज्ञानी ब्राह्मण शूद्रके मृतक देहके पीछे जाता है वह तीन दिन तक अशुद्ध रहता है ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त समुद्रगामिनी नदीके किनारे जा कर सौ प्राणायाम कर घृतक भोजन करे तब उसकी शुद्धि होती है ॥ ४८ ॥

विनिवर्त्य यदा शूद्रा उदकांतमुपस्थिताः ॥
द्विजैस्तदानुगंतव्या एष धर्मः सनातनः ॥ ४९ ॥
तस्माद्द्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत ॥
दृष्टे सूर्यावलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥ ५० ॥
इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कुर्याच्चान्द्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैन्दवद्वयम् ॥ १२ ॥
शुद्ध्यर्थमष्टमे चैव षण्मासं कृच्छ्रमाचरेत् ॥
पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥ १३ ॥

यदि पांच दिन तक पतितोंका संसर्ग किया हो तो उसकी शुद्धि तीन दिन तक उपवास करनेसे होती है; और जो दश दिन संसर्ग करता है उसकी शुद्धि कृच्छ्रव्रतके करनेसे होती है, और जो बारह दिन संसर्ग करता है वह तप्तकृच्छ्र करनेसे शुद्ध होता है ॥ ११ ॥ पंद्रह दिन संसर्ग करनेसे दश दिन तक उपवास करे और एक महीने तक संसर्ग होनेसे पराक व्रत करे, दो महीने संसर्ग होने पर चांद्रायण व्रत करे और चार महीने संसर्ग होनेसे दो चांद्रायण व्रत करे ॥ १२ ॥ यदि एक वर्ष तक संसर्ग रहा हो तो छ महीने तक कृच्छ्रव्रत करे और जितने पक्ष तक संसर्ग रहा हो उतनी ही सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे शुद्धि होती है, पूर्वोक्त प्रकारसे पहला पक्ष ५ दिनका है, ऐसे ही १०, १२, १५, दिन १, मास, २ मास ४ मास और एक वर्षके क्रमसे ८ पक्षका जानना ॥ १३ ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति ॥
सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १४ ॥

जो ऋतुमती होनेके पीछे स्नान करके स्त्री अपने स्वामीके समीप नहीं जाती वह मृत्युके उपरान्त नरकको जाती है, और नरक भोगनेके उपरान्त वारंवार विधवा होती है ॥ १४ ॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति ॥
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

और जो मनुष्य अपनी ऋतुस्नाता स्त्रीके समीप नहीं जाता वह घोर गर्भहिंसाके पापसे युक्त होता है इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं ॥ १५ ॥

दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं याऽवमन्यते ॥
सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥ १६ ॥
पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥
अपृष्ट्वा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम् ॥
सर्वं तद्राक्षसान्गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥
बांधवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या ॥
गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत्क्वचित् ॥ १९ ॥
यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने ॥
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥ २० ॥

जो स्त्री अपने दरिद्री, रोगी वा धूर्त पतिके होने पर उसका तिरस्कार करती है वह मृत्युके उपरान्त वारंवार कूकरी वा शूकरीकी योनिको प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ जो स्त्री अपने पतिके जीवित रहते हुए निराहार व्रत करती है वह पतिकी आयु हरण करती है और मरनेके उपरान्त नरकको जाती है ॥ १७ ॥ जो स्त्री विना पतिकी आज्ञाके व्रत करती है उसका फल राक्षस ले जाते हैं, और वह व्रत निष्फल हो जाता है मनुजीका यह वचन है ॥ १८ ॥ जो स्त्री अपने बंधुबांधवोंसे अथवा अपनी जाति वालोंसे दुराचरण करती है, या जो गर्भपात करती है उस स्त्रीसे कभी वार्तालाप न करे ॥ १९ ॥ जो पाप ब्रह्महिंसामें होता है उससे दुगुना पाप गर्भ गिरानेमें होता है उसका प्रायश्चित्त नहीं है इस कारण उस स्त्रीका त्याग ही करना उचित है ॥ २० ॥

न कार्यमावसथ्येन नाग्निहोत्रेण वा पुनः ॥
स भवेत्कर्मचांडालो यस्तु धर्मपराङ्मुखः ॥ २१ ॥

जो मनुष्य गृहस्थके कर्मोंको नहीं करता है अथवा जो अग्निहोत्र नहीं करता है या जो धर्मसे विमुख रह कर कर्म करता है वह चांडाल होता है ॥ २१ ॥

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥
स क्षेत्री लभते बीजं न बीजी भागमर्हति ॥ २२ ॥

यदि जल और पवनके वेगसे किसी मनुष्यका बीज दूसरे मनुष्यके खेतमें आकर उत्पन्न हो जाय तो उस बीजके फलका भागी खेत वाला ही होता है;बीजवालेको भाग नहीं मिलता ॥ २२ ॥ इसी भांति कुंड और गोलक दो पुत्र जो परस्त्रीसे उत्पन्न होते हैं वह स्त्रीके ही पुत्र हैं, वीर्य देने वालेके नहीं.पतिके जीवित रहते हुए जारसे उत्पन्न हुए पुत्रको कुंड कहते हैं और पतिकी मृत्यु होनेके पीछे उत्पन्न हुए पुत्रको गोलक कहते हैं ॥ २३ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः ॥
दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ २४ ॥

औरस क्षेत्रज, तथा दत्तक और कृत्रिम यह भी पुत्र हैं; जो पुत्र माता और पिताने किसीको दिया हो वह दत्तक कहलाता है ॥ २४ ॥

परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते ॥
सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपंचमाः ॥ २५ ॥
द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च ॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चांद्रायणं चरेत् ॥ २६ ॥
कुब्जवामनषंढेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥
जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिविंदतः ॥ २७ ॥
पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा ॥
दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥ २८ ॥
ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् ॥
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥ २९ ॥

परिवित्ति और परिवेत्ता, तथा जो कन्या परिवेत्तासे विवाही जाय, कन्यादान करने वाला और याजक यह पांचों नरकमें जाते हैं, यदि बडे भाईसे पहले छोटे भाईका विवाह हो गया हो तो वह दोनों भाई दो कृच्छ्रव्रत करें तब उनकी शुद्धि होती है, और विवाहिता कन्या एक कृच्छ्रव्रत करे और कन्यादान करनेवाला कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रत करे; और होता (हवनका करनेवाला) चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ जो बडा भाई, कुबडा, बौना, नपुंसक अथवा तोतला, मूर्ख, जन्मसे अंधा, बहिरा वा गूँगा हो तो वह छोटा भाई परिवेदनके दोषका भागी नहीं है ॥ २७ ॥ यदि चचेरा वा तयेरा भाई अथवा सपत्नीका पुत्र या दूसरी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र बडा भाई हो तो सन्तान उत्पत्ति व

अग्निहोत्रके लिये विवाह करनेमें कुछ दोष नहीं है ॥ २८ ॥ बडे भाईके होते हुए छोटे भाई अग्निहोत्रका ग्रहण न करे बरन् शंखके वचनानुसार उसकी आज्ञा ले कर अग्निहोत्रके ग्रहण करनेका अधिकारी हैं ॥ २९ ॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतितेऽपतौ ॥
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३० ॥

जिस कन्याका वाग्दान हो गया हो और विवाह न हुआ हो यदि इसी समयमें उसका पति मर जाय या नष्ट हो जाय अथवा संन्यासी या नपुंसक हो जाय तो उस कन्याका विवाह दूसरे पतिके साथ कर देना चाहिये ॥ ३० ॥

मृते भर्त्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता ॥
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ३१ ॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानवे ॥
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्त्तारं याऽनुगच्छति ॥ ३२ ॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥
एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ ३३ ॥
॥ इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पतिके मर जाने पर जो स्त्री ब्रह्मचर्य नियममें स्थित हो वह मरनेके उपरान्त ब्रह्मचारीके समान स्वर्गमें जाती है ॥ ३१ ॥ और स्वामीके मरनेके उपरान्त जो स्त्री अपने पतिके साथ सती हो जाती है वह स्त्री मनुष्यके शरीरमें जितने रोम हैं उतने ही वर्ष तक स्वर्गमें निवास करती है; अर्थात् सती स्त्री साढे तीन करोड वर्ष तक स्वर्गमें वास करती है ॥ ३२ ॥ सर्पका पकडने वाला जिस भांति सर्पको गड्ढेमेंसे बलपूर्वक निकालता है उसी प्रकार वह स्त्री अपने पतिका पापोंसे उद्धार कर उसके साथ आनंद करती है ॥ ३३ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

भांडस्थमंत्यजानां तु जलं दधि पयः पिबत् ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥ ३० ॥
ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः ॥
शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः ॥ ३१ ॥
भुंक्तेऽज्ञानाद्द्विजश्रेष्ठश्चंडालान्नं कथंचन ॥
गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३२ ॥
एकैकं ग्रासमश्नीयाद्गोमूत्रे यावकस्य च ॥
दशाहं नियमस्थस्य व्रतं तत्तु विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥

यदि श्वपच या चांडालसे ब्राह्मण वार्तालाप करे तो वह दूसरे ब्राह्मणसे वार्तालाप कर एक वार ही गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य चांडालोंके साथ एक स्थान वा एक वृक्षकी छायामें शयन करता है तो उसकी शुद्धि एक दिन रात उपवास करनेसे होती है और जो चांडालके साथ मार्ग चलता है और स्नान करता है वह जितने पग चला हो उतने गायत्री मन्त्रोंका स्मरण करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ २३ ॥ चांडालका दर्शन करने वाला सूर्य भगवान्‌का शीघ्र ही दर्शन कर ले और चांडालको छूने वाला मनुष्य वस्त्रों सहित स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ यदि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य यह अज्ञानतासे चांडालकी बनाई हुई बावडीमें जल पी ले तो सारे दिन निराहार रह कर एक दिनमें शुद्ध होजाते हैं।। २५॥ जिस कुएमें चांडालके पात्रका जल गिर गया हो उस कुएके जलको पीनेसे तीन दिन तक गोमूत्र पीवे और जौका भोजन करनेसे शीघ्र शुद्ध होता है; यदि कोई ब्राह्मण विना जाने हुए चांडालके घडेका जल पी लेता है, यदि उसने जल पीकर उसी समय उगल दिया या वमन कर दी है तो वह प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्धि प्राप्त कर सकता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ परन्तु उस जलको न उगल कर वह जल शरीरमें ही पच जाय तो प्राजापत्य व्रतके करनेसे उसकी शुद्धि नहीं होगी वह सांतपन व्रतके करनेसे शुद्ध होगा ॥२८॥ ब्राह्मण सांतपन व्रत करे, क्षत्रिय प्राजापत्य व्रत करे, वैश्य अर्द्धप्राजापत्य करे और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥२९॥ यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र यह विना जाने हुए अन्त्यजोंके पात्रका जल,दही, दूध यह पीलें ॥३०॥ तो ब्रह्मकूर्चके उपवास करनेसे उनकी शुद्धि होती है; और शूद्र एक दिन उपवास करनेसे और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको दान देनेसे शुद्ध होता है ॥ ३१ ॥ जिस ब्राह्मणने अज्ञानतासे चांडालके यहांका अन्न भोजन किया हो उसकी शुद्धि दश दिन गोमूत्र और यवका भोजन करनेसे होती है ॥ ३२ ॥ वह प्रतिदिन दश दिन तक गोमूत्र और यवका एक २ ग्रास भक्षण कर नियम सहित व्रत करे तब दश दिन में शुद्ध होता है ॥ ३३ ॥

अविज्ञातस्तु चंडालो यत्र वेश्मनि तिष्ठति ॥
विज्ञाते तूपसंन्यस्य द्विजाः कुर्युरनुग्रहम् ॥ ३४ ॥
मुनिवक्त्रोद्गतान्धर्मान्गायंतो वेदपारगाः ॥
पतंतमुद्धरेयुस्तं धर्मज्ञाः पापसंकरात् ॥ ३५ ॥
दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम् ॥
भुंजीत सह भृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ ३६ ॥
त्र्यहं भुंजीत दध्ना च त्र्यहं भुंजीत सर्पिषा ॥
त्र्यहं क्षीरेण भुंजीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥ ३७ ॥
भावदुष्टं न भुंजीत नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ॥
दधिक्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं घृतस्य तु ॥ ३८ ॥

यदि किसी ब्राह्मणके घर चांडाल विना जाने रह जाय और इसके उपरान्त वह घरवाला उसे निकाल दे तो जिसके घर चांडाल रहा था उस पर ब्राह्मण कृपा करें ॥ ३४ ॥ अर्थात् पारंगत धर्मज्ञ ब्राह्मण मुनियोंके मुखसे कहे हुए धर्मोंको गा कर उस पतित होते हुए पुरुषका उद्धार करें ॥३५॥ अब उस पतित हुएका प्रायश्चित्त कहते हैं। वह पुरुष अपने कुटुम्ब और सेवकोंके साथ दही, घृत और इसके साथ

॥ ३९ ॥ कुसुम, गुड, कपास, लवण, तेल तथा धान्यादिकोंको घरमेंसे बाहर निकाल कर घरमें अग्नि लगा दे; अर्थात् घरकी सम्पूर्ण भूमिको अग्निसे तपावे ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त घरको गोमयादिसे शुद्ध करके आप पूर्वोक्त व्रतोंसे शुद्ध हो उस घरमें सुपात्र ब्राह्मणोंको भोजन करावे; पीछे तीनसौ गौ और एक बैल उनको दक्षिणामें दे ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त उस घरको लीप पोत कर उसमें हवन करे तब उस पृथ्वीकी शुद्धि होती है, ब्राह्मणोंके आधारसे भूमिदोष नहीं होता, अर्थात् लिपी हुई पृथ्वीके ऊपर ब्राह्मण बैठ जाय तो वह पृथ्वी अशुद्ध नहीं रहती; अन्य जातिके बैठनेसे पृथ्वी अशुद्ध हो जाती है, इस कारण उसे फिर शुद्ध करना उचित है ॥ ४२ ॥

चंडालैः सह संपर्कं मासं मासार्द्धमेव वा ॥
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ ४३ ॥

यदि चांडालके साथ एक महीने या एक पक्ष तक संसर्ग रहा हो तो पंद्रह दिन तक गोमूत्र पान करे और यवका भोजन करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ४३ ॥

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी ॥
चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे त्वविज्ञातानुतिष्ठति ॥ ४४ ॥
ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु ॥
गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ॥ ४५ ॥

यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके घरमें धोबन, चमारी, लुब्धकी अथवा बांसका कार्य करनेवाली अज्ञानतासे रह जाय ॥ ४४ ॥ तो जाननेके उपरान्त जो प्रायश्चित्त चांडालकी स्थिति करने पर पहले कह आये हैं उससे आधा प्रायश्चित्त करे, सारा कार्य करे केवल गृहदाह न करे ॥ ४५ ॥

गृहस्याभ्यंतरं गच्छेच्चंडालो यदि कस्यचित् ॥
तमागाराद्विनिःसार्य मृद्भांडं तु विसर्जयेत् ॥ ४६ ॥
रसपूर्णं तु मृद्भांडं न त्यजेत्तु कदाचन ॥
गोमयेन तु संमिश्रैर्जलैः प्रोक्षेद्गृहं तथा ॥ ४७ ॥

यदि किसीके घरमें चांडाल चला जाय तो उसे घरसे बाहर निकाल कर मिट्टीके पात्रोंको त्याग दे ॥ ४६ ॥ जिन मिट्टीके पात्रोंमें घृतादि रस भरा हो उनको न त्यागे, इसके ऊपर गोबरसे घरको लीप डाले ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे ॥
कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ४८ ॥
गवां मूत्रपुरीषेण दधिक्षीरेण सर्पिषा ॥
त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ४९ ॥

क्षत्रियोऽपि सुवर्णस्य पंच माषान्प्रदाय तु ॥
गोदक्षिणां तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत्
शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥ ५० ॥

(प्रश्न) यदि ब्राह्मणके व्रणमें पीव और रुधिर हो कर उसमें कृमि हो जायँ तो उसका प्रायश्चित्त क्या है ! ॥ ४८ ॥ (उत्तर) जिस ब्राह्मणको व्रणमें कृमि हों वह गौके मूत्र, गोबर, दही, दूध और घृतमें तीन दिन तक स्नान करे और इन्हीं पांचों वस्तुओंको मिला कर पीनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ ४९ ॥ क्षत्रियके व्रणमें यदि कृमि पड गये हों तो सुपात्र ब्राह्मणको पांच मासे सुवर्ण दान दे तथा वैश्य गोदान और उपवास करनेसे शुद्ध होता है, शूद्रको उपवास करनेकी आज्ञा नहीं है उसकी शुद्धि केवल दान देनेसे ही हो जाती है ॥ ५० ॥

अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदंति क्षितिदेवताः ॥
प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलं हि तत् ॥ ५१ ॥
जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥
सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥ ५२ ॥

जब ब्राह्मण "अच्छिद्रमस्तु" यह वचन उच्चारण करे तब मस्तक नवाय

दुर्बल तथा बालक और वृद्धके ऊपर कृपा करनी योग्य है, इसके अतिरिक्त अन्य पुरुषके व्रत होम आदिकमें कृपा करनेसे दोष होता है ॥ ५५ ॥ स्नेह, लोभ अथवा भय तथा अज्ञानसे जो मनुष्य अनुग्रह करते हैं वह पाप उन्हींको होता है ॥ ५६ ॥

शरीरस्यात्यये प्राप्ते वदंति नियमं तु ये ॥
महत्कार्योपरोधेन नास्वस्थस्य कदाचन ॥ ५७ ॥
स्वस्थस्य मूढाः कुर्वंति वदंति नियमं तु ये ॥
ते तस्य विघ्नकर्तारः पतंति नरकेऽशुचौ ॥ ५८ ॥

अन शरीरका नाश प्राप्त होने पर जो नियम कहते हैं, महत्कार्यके अनुरोधमे अस्वस्थको भी नियम कहते हैं ॥ ५७ ॥ और जो मंदबुद्धि पुरुष स्वस्थोंके निमित्त नियमका उपदेश नहीं करते तथा जो मनुष्य उनके प्रायश्चित्तमें विघ्न करते हैं वे अशुचिनामक नरक में जाते हैं॥५८॥

स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥
वृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥ ५९ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणकी विना आज्ञा लिये स्वयं ही प्रायश्चित्तके निमित्त व्रत करते हैं उनका वह व्रत निष्फल हो जाता है, उनको व्रत करनेका पुण्य नहीं होता ॥ ५९ ॥

स एव नियमो ग्राह्यो यमेकोऽपि वदेद्द्विजः ॥
कुर्याद्वाक्यं द्विजानां तु ह्यन्यथा भ्रूणहा भवेत् ॥ ६० ॥

एक ब्राह्मण भी जिस नियमके करनेके लिये आज्ञा दे दे तो वह नियम करना योग्य है; जो इनका वचन उल्लंघन करता है उसको भ्रूणहिंसाका पाप होता है ॥ ६० ॥

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः ॥
तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यंति मलिना जनाः ॥ ६१ ॥
ब्राह्मणा यानि भाषंते मन्यंते तानि देवताः ॥
सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा ॥ ६२ ॥
उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः ॥
विप्रैः संपादितं यस्य संपूर्णं तस्य तत्फलम् ॥ ६३ ॥

ब्राह्मण जंगमतीर्थस्वरूप हैं और साधु भी तीर्थस्वरूप हैं, पापी पुरुष उन ब्राह्मणोंके वचनरूपी जलसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ६१ ॥ उत्तम ब्राह्मणोंके वचनको देवता भी मानते हैं, वेदाभ्यासी सदाचारयुक्त ब्राह्मण सर्वदेवमय हैं, उनका वचन निष्फल नहीं होता ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण जिसके उपवास व्रत तथा स्नान, तीर्थ अथवा जप, तप आदिको यह संपन्न हो जाय इस भांति कह दें उन उपवासादिके करनेवालेको पूर्ण जाय फल प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥

अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते ॥
तदंतरा स्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ॥ ६४ ॥

कृमि और मक्खी आदिसे जो अन्न दूषित हो जाय या जिसमें बाल पड जायँ तो जलसे हाथ धो डाले और अन्न पर किंचित्मात्र ही भस्म डाल दे तब शुद्धि हो जाती है ॥ ६४॥

भुंजानश्चैव यो विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत् ॥
स्वमुच्छिष्टमसौ भुंक्ते यो भुंक्ते भुक्तभाजने ॥ ६५ ॥

जो ब्राह्मण भोजन करते समयमें अपने पैरोंको छुए तो और उच्छिष्ट पात्रमें जो भोजन करता है वह अपने उच्छिष्टको खाता है ॥ ६५ ॥

पादुकास्थो न भुंजीत पर्यकस्थः स्थितोऽपि वा ॥
श्वानचण्डालदृक्चैव भोजनं परिवर्जयेत् ॥ ६६ ॥

खडाऊ पहन कर या पलँग पर बैठ कर भोजन न करे, कुत्ते और चांडालको देखता हुआ भोजन न करे ॥ ६६ ॥

यदन्नं प्रतिषिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च ॥

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥
त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ८ ॥
यस्तां समुद्वहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ॥
असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ९ ॥
यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ॥
स भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

आठ वर्षकी कन्याको गौरी और नौ वर्षकी कन्याको रोहिणी कहते हैं और दशवर्षकी कन्या कन्या ही कहाती है, उसके उपरान्त रजस्वला हो जाती है ॥ ६ ॥ कन्याके बारह वर्ष होने पर यदि कन्याका दान न किया जाय तो उस मनुष्यके पितर प्रत्येक महीनेमें उसके रजका पान करते हैं ॥ ७ ॥ कन्याको (जिसका विवाह न हुआ हो) रजस्वला हुई देखकर माता, पिता और बडा भाई यह तीनों नरकको जाते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण अज्ञानतासे मोहित होकर उस कन्याके साथ विवाह करता है वह वृषलीपति कहाता है, उससे संभाषण करना उचित नहीं और पंक्तिसे बाहर कर देना योग्य है ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मण एक रात्रि भी वृषलीका सेवन करता है वह तीन वर्ष तक भिक्षान्नका भोजन करता हुआ गायत्री मन्त्रके जपनेसे शुद्ध होता है ॥ १० ॥

अस्तंगते यदा सूर्ये चांडालं पतितं स्त्रियः ॥
सूतिकां स्पृशते चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥ ११ ॥
जातवेदं सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च ॥
ब्राह्मणानुमतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

(प्रश्न) सूर्यके अस्त होने पर जो ब्राह्मण चंडाल व पतित मनुष्य अथवा सूतिका स्त्री स्पर्श कर ले उसकी शुद्धि किसप्रकार होगी ॥ ११ ॥ (उत्तर) ब्राह्मणकी आज्ञासे स्नानके उपरान्त अग्नि, सुवर्ण और चन्द्रमाका दर्शन करे,यदि उस समय चन्द्रमा उदय न हुआ हो तो जिस दिशामें चन्द्रमा हो उसी दिशाका दर्शन कर ले तब शुद्ध होता है ॥ १२ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणीं तथा ॥
तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १३ ॥
स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रियां तथा ॥
अर्द्धकृच्छ्रं चरेत्पूर्वा पादमेकं त्वनन्तरा ॥ १४ ॥
स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजां तथा ॥
पादहीनं चरेत्पूर्वा पादमेकमनंतरा ॥ १५ ॥
स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजां तथा ॥
कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुद्ध्यति ॥ १६ ॥

यदि दो ब्राह्मणी रजस्वला होकर परस्परमें स्पर्श करलें तो प्रत्येक स्त्री तीन २ दिन व्रत करे तब शुद्ध होगी ॥ १३ ॥ यदि ब्राह्मणी और क्षत्रिया यह दोनों रजस्वला होकर परस्परमें स्पर्श कर लें तो ब्राह्मणी अर्द्धकृच्छ् करे और क्षत्रिया चौथाई कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होती है ॥ १४ ॥ यदि ब्राह्मणी और वैश्यकी स्त्री इन दोनोंके ऋतुमती होनेपर आपसमें एक दूसरीका स्पर्श कर ले, तो ब्राह्मणी पादोन (पौन) कृच्छ्र व्रत करे और वैश्यकी स्त्री चौथाई कृच्छ्र व्रत करनेसे शुद्ध होती है ॥ १५ ॥ यदि ब्राह्मणी और शूद्रकी पुत्री रजस्वला होकर परस्परमें एक दूसरेका स्पर्श करले तो ब्राह्मणी पूर्ण कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होती है और शूद्रकी पुत्री दान करनेसे ही शुद्ध हो जाती है ॥ १६ ॥

स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥
कुर्याद्रजोनिवृत्तौ तु देवपित्र्यादिकर्म च ॥ १७ ॥

यद्यपि रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होती है परन्तु रजकी निवृत्ति होनेपर ही देवकर्म तथा पितृकर्म कर सकती है ॥ १७ ॥

कुर्याद्रजोनिवृत्तौ तु देवपित्र्यादिकर्म च ॥ १७ ॥

यद्यपि रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होती है परन्तु रजकी निवृत्ति होने पर ही देवकर्म तथा पितृकर्म कर सकती है ॥ १७ ॥

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं तु प्रवर्त्तते ॥
नाशुचिः सा ततस्तेन तत्स्याद्वैकारिकं मलम् ॥ १८ ॥

जिस स्त्रीको रोगके कारण प्रतिदिन रजःस्राव हो वह स्त्री उस रजसे अशुद्ध नहीं होती, कारण कि यह रज स्वाभाविक नहीं है ॥ १८ ॥

साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्त्तते ॥
रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि ॥ १९ ॥

जबतक स्त्रीको रजकी प्रवृत्ति रहती है तबतक उसका अधिकार सत्कर्ममें नहीं है, और पतिके साथ सहवास करने योग्य और घरके कामकाज करने योग्य भी नहीं होती ॥ १९ ॥

प्रथमेऽहनि चंडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ २० ॥

स्त्री रजस्वला होने पर पहले दिन चांडाली और दूसरे दिन ब्रह्महत्यारी, तीसरे दिन धोबिनके समान होती है और चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होती है ॥ २० ॥

आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ॥
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ॥ २१ ॥

पुरुष अथवा स्त्री रोगी हो जाय और उसी अवस्थामें उसकी स्नानकी आवश्यकता हो तो निरोग मनुष्य क्रमानुसार दश वार स्नान करके उस रोगीको स्पर्श कर ले तब वह रोगयुक्त पुरुष अथवा स्त्री शुद्ध हो जाते हैं ॥ २१ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा पुनः ॥
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२ ॥

स्वयम् उच्छिष्ट ब्राह्मण यदि किसी अन्य सजातीय उच्छिष्टका स्पर्श करे अथवा शूद्र श्वानका स्पर्श कर ले तो वह एक रात्रि उपवास कर पीछे पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शे स्नानं विधीयते ॥
तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २३ ॥

अनुच्छिष्ट शूद्रके स्पर्श हो जानेसे ब्राह्मणको स्नान करना उचित है, यदि कोई उच्छिष्ट शूद्र स्पर्श कर ले तो प्रजापत्य व्रत करे ॥ २३ ॥

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते ॥
सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्ध्यतेऽग्न्युपलेपनैः ॥ २४ ॥
गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च ॥
शुद्ध्यंति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥ २५ ॥
गंडूषं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने ॥
षण्मासान्भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥ २६ ॥

जिस कांसीके पात्रमें सुराका स्पर्श न हुआ हो वह भस्मसे मार्जन करने पर शुद्ध हो जाता है और जिसमें मदिराका स्पर्श हो गया है वह वारंवार अग्निमें डालकर माजनेसे ही शुद्ध हो जाता है ॥ २४ ॥ गौके सूंघे हुए, काकके चोंच लगाये हुए, कुत्तेके चाटे हुए तथा शूद्रके उच्छिष्ट कांसीके पात्र दश वार खटाई आदि क्षार पदार्थसे रगड कर धोवे तब उनकी शुद्धि हो जाती है ॥ २५ ॥ यदि कांसीके पात्रमें किसीने कुल्ला कर दिया हो अथवा पैर धो

दिया हो तो उस पात्रको छे महीने तक पृथ्वीमें गाड दे इसके पीछे उखाड कर व्यवहारमें लावे ॥ २६ ॥

आयसेष्वायसानां च सीसस्याग्नौ विशोधनम् ॥
दंतमस्थि तथा शृंगं रौप्यं सौवर्णभाजनम् ॥ २७ ॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथानृते ॥
पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ ३८ ॥

छींकने पर, थूकने पर, दांतोंसे किसी अंगके उच्छिष्ट हो जाने पर, मिथ्या बोलने पर या पतितोंके साथ सम्भाषण करने पर अपने दहिने कानका स्पर्श करे ॥ ३८ ॥

अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसूर्यानिलास्तथा ॥
एते सर्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठंति दक्षिणे ॥ ३९ ॥
प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ॥
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत् ॥ ४० ॥

कारण कि अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य, पवन यह सब ब्राह्मणोंके दहिने कानमें निवास करते हैं ॥ ३९ ॥ प्रभास आदि तीर्थ और गंगा इत्यादि नदियें यह ब्राह्मणोंके दहिने कानमें स्थिति करती हैं, यह वचन मनुजीका है ॥ ४० ॥

देशभंगे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥ ४१ ॥
येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन वा ॥
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ४२ ॥
आपत्काले तु निस्तीर्णे शौचाचारं न चिंतयेत् ॥

शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥ ४३ ॥
इति पराशरीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

देशका नाश होनेके समय, परदेशमें रोगयुक्त होने पर और आपत्तियोंके आने पर पहले सब प्रकारसे अपने शरीरकी रक्षा करनी उचित है, इसके उपरान्त धर्माचरण करे ॥ ४१ ॥ अपने ऊपर विपत्ति आने पर कोमल वा कठोर वा जिस किसी उपायसे हो सके अपने दीन आत्माका उद्धार करे; इसके पीछे सामर्थ्ययुक्त होकर धर्मका अनुष्ठान करे ॥ ४२ ॥ आपत्तिकाल उपस्थित होनेपर शौचाचारका विचार न करे, पहले अपना उद्धार करे, इसके पीछे स्वस्थ होकर धर्माचरण करे ॥ ४३ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

गवां बंधनयोक्त्रेषु भवेन्मृत्युरकामतः ॥
अकामकृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥
वेदवेदांगविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ॥
स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥ २ ॥

(प्रश्न) यदि कोई गौ खूँटेमें बँधी हुई अकामतः मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उस अकामकृत पापका प्रायश्चित्त किस भांति होना उचित है ? ॥ १ ॥ (उत्तर) वेद वेदांगके जाननेवाले, धर्मशास्त्रके पारदर्शी और सर्वदा अपने कर्तव्य कर्ममें निरत ऐसे ब्राह्मणोंसे वह पापी पुरुष अपना पाप निवेदन कर दे ॥ २ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् ॥
उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशं समर्हति ॥ ३ ॥
सद्यो निःसंशये पापे न भुंजीतानुपस्थितः ॥
भुंजानो वर्द्धयेत्पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥ ४ ॥
संशये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः ॥
प्रमादस्तु न कर्त्तव्यो यथैवासंशयस्तथा ॥ ५ ॥
कृत्वा पापं न गूहेत गूह्यमानं विवर्द्धते ॥
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ ६ ॥
तेऽपि पापकृतां वैद्या हंतारश्चैव पाप्मनाम् ॥
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमंतो रुजापहाः ॥ ७ ॥

उस पापीको किस अवस्थासे उन ब्राह्मणोंके पास जाना होगा सो कहते हैं, न्यायमार्गसे अपने पास आये हुए उस पापीको ब्राह्मण व्रत करनेकी आज्ञा दें ॥ ३ ॥ यदि निश्चय ही पाप किया है यह विदित होजाय तो उस पापको धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके अर्थ निवेदन किये विना भोजन न करे; यदि विना परिषद्के निकट गये भोजन कर ले तो पापकी वृद्धि होती है ॥ ४ ॥

गायत्रीहीन ब्राह्मण शूद्रसे भी अधिक अपवित्र है; और जो ब्राह्मण गायत्रीनिष्ठ और ब्रह्मतत्त्वको जानते हैं वह श्रेष्ठ और पूजनीय हैं ॥ ३२ ॥

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेंद्रियः ॥
कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥ ३३ ॥

दुःशील होने पर भी ब्राह्मण पूजनीय हैं और शूद्र जितेन्द्रिय होने पर भी पूजनीय नहीं हो सकता, ऐसा कौन मनुष्य है जो देख भाल कर भी दूषित अंगवाली गौको त्याग कर शीलवती गधीको दुहेगा ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥ ३३ ॥

धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ॥
क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥ ३४ ॥

जो ब्राह्मण धर्मशास्त्ररूपी रथ पर चढकर वेदरूपी खड्गको धारण करते हैं वे हँसीसे भी जो कुछ कह दें उसको ही परम धर्म जानना ॥ ३४ ॥

चातुर्वेद्योऽविकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः ॥
त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः पर्षदेषा दशावरा ॥ ३५ ॥

चारों वेदोंका जानने वाला, निश्चित ज्ञानयुक्त, वेदके अंगोंका पारदर्शी और धर्मशास्त्र पढाने वाला इकला ही श्रेष्ठ परिषद् होसकता है,प्रधान आश्रमीके दश होने पर भी वह मध्यम ही परिषद् होती है ॥ ३५ ॥

राज्ञश्चानुमते स्थित्वा प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥
स्वयमेव न कर्त्तव्यं कर्तव्या स्वल्पनिष्कृतिः ॥ ३६ ॥
ब्राह्मणांस्तानतिक्रम्य राजा कर्तुं यदीच्छति ॥
तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति ॥ ३७ ॥

इस कारण ब्राह्मण राजाके आज्ञानुसार ही प्रायश्चित्तकी व्यवस्था दे; अपने आपसे कदापि न दे ॥ ३६ ॥ यदि ब्राह्मणकी विना सम्मतिके लिये राजा कोई व्यवस्था दे दे तो उस पापीका पाप सौगुना बढ कर राजाके शरीरमें प्रवेश कर जाता है ॥ ३७ ॥

प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवतायतनाग्रतः ॥
आत्मकृच्छ्रं ततः कृत्वा जपेद्वै वेदमातरम् ॥ ३८ ॥
सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥
गवां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा गाश्चाप्यनुव्रजेत् ॥ ३९ ॥
उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥ ४० ॥
आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ॥
भक्षयंतीं न कथयेत्पिबंतं चैव वत्सकम् ॥ ४१ ॥
पिबंतीषु पिबेत्तोयं संविशंतीषु संविशेत् ॥
पतितां पंकलग्नां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥ ४२ ॥

यदि ब्राह्मण देवमंदिरके सम्मुख बैठकर व्यवस्था दे दे तो वेदमाता गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३८ ॥ प्रायश्चित्त करनेके समयमें पहले शिखासहित शिरका मुंडन करावे, त्रिकालमें स्नान करे और दिनमें गौके पीछे २ फिरे और रात्रिके समय गोशालामें शयन करे ॥ ३९ ॥ चाहे गरम पवन चले, चाहे ठंडी हवा चले, चाहे आंधी चलती हो, चाहे वर्षा होती हो परन्तु अपनी रक्षाकी ओर ध्यान न देकर अपनी शक्तिके अनुसार गौकी रक्षा करनी अवश्य कर्तव्य है ॥ ४० ॥ अपने या दूसरेके घरमें अथवा खेतमें वा खलमें यदि गौ कुछ धान्यादिक खाती हो तो कुछ न बोले और जो बछडा गौका दूध पीता हो तो भी कुछ न कहे ॥ ४१ ॥ गौके जलपान करने पर पीछे आप जल पीवे, गौके शयन करने पर पीछे आप शयन करे और यदि गौ किसी भांति गिर पडे या कीचडमें फँस जाय तो यथाशक्ति उसको उठावे ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥ ४३ ॥

गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥
विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥
गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मण चांडाली वा श्वपचीमें गमन करता है वह ब्राह्मण ब्राह्मणोंकी आज्ञानुसार तीन रात्रि उपवास करे ॥ ५ ॥ इसके पीछे शिखासहित सम्पूर्ण केशोंका मुण्डन करावे और दो प्राजापत्य व्रत करे, इसके पीछे ब्रह्मकूर्चका पान करके भोजनादिद्वारा ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे ॥६॥ इस पीछे वह नित्य गायत्रीका जप करता रहे, फिर एक गौ और एक बैल ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे तो वह निरसन्देह शुद्धि प्राप्त कर सकता है ॥ ७ ॥ यह पाराशरजीका वचन है कि दो गौ दक्षिणामें देनेसे शुद्धि होती है ॥ ८ ॥

क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा चण्डालीं गच्छतो यदि ॥
प्राजापत्यद्वयं कुर्याद्दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥ ९ ॥

यदि कोई क्षत्रिय वा वैश्य किसी चांडालीमें गमन करे तो वह दो प्राजापत्य व्रत करे और ब्राह्मणोंको एक गौ और एक बैल दक्षिणामें दे ॥ ९ ॥

श्वपाकीं वाथ चांडालीं शूद्रो वा यदि गच्छति ॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत् ॥ १० ॥

यदि शूद्र श्वपाकी और चांडालीके साथ गमन करे तो एक प्राजापत्य व्रत कर ब्राह्मणोंको चार गोमिथुन दक्षिणामें दे ॥ १० ॥

मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा ॥
एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्राणि संचरेत् ॥ ११ ॥
चांद्रायणत्रयं कुर्याच्छिश्नच्छेदेन शुद्ध्यति ॥
मातृष्वसृगमे चैव आत्ममेढ्रनिकृंतनम् ॥ १२ ॥
अज्ञानेन तु यो गच्छेत्कुर्याच्चांद्रायणद्वयम् ॥
दश गोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥

अपनी माता, बहन और पुत्रीमें जो मनुष्य अज्ञानतासे गमन करता है वह तीन कृच्छ्र व्रत करे ॥११॥वा तीन चांद्रायण करे पीछे शिर छेदन करनेसे शुद्धि होती है और माताकी बहनके साथ गमन करने वाला अपनी लिङ्गेन्द्रिय काटने पर ही शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ जो पुरुष अज्ञानतासे मौसीके विषय गमन करता है वह दो चांद्रायण व्रत करे और दश गौ और दश बैल ब्राह्मणोंको दान करे तब शुद्ध होता है, यह पराशरजीका कथन है ॥ १३ ॥

पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तं च भ्रातृजाम् ॥
गुरुपत्नीं स्नुषां चैव भ्रातृभार्यां तथैव च ॥ १४ ॥
मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥
गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

जो पुरुष सौतेली मातामें, माताकी सखीमें, भाईकी लडकीमें, गुरुकी स्त्रीमें, पुत्रकी स्त्रीमें, भ्राताकी स्त्रीमें ॥ १४ ॥ मामाकी स्त्रीमें या अपने गोत्रकी कन्याके साथ गमन करता है वह तीन प्राजापत्य व्रत कर दो गौ दक्षिणामें देनेसे निःसन्देह शुद्ध हो जाता है ॥ १५ ॥

पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्री कपीं तथा ॥
खरीं च शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १६ ॥

पशु, वेश्या, महिषी (भैंस), ऊंटनी; वानरी, गर्दभी व शूकरीके साथ गमन करने वाला प्राजापत्य व्रत करे ॥ १६ ॥

गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणे ददेत् ॥
महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

गौके साथ गमन करने वाला तीन रात्रि उपवास कर ब्राह्मणोंको एक गौ दान करे । महिषी, ऊंटनी और गर्दभीके साथ गमन करने वाला एक रात्रिदिन उपवास करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥

डामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ॥
बंदिग्राहे भयार्ता वा सदा स्वस्त्रीं निरीक्षयेत् ॥ १८ ॥

मारामारी वा काटाकाटीके समयमें, युद्धके समय, दुर्भिक्षके समय, जनक्षयके समय, भय प्राप्त होनेके समय कोई आक्रमण करने वाला यदि पकडकर या वन्दी करके ले जाय तो उस समय सर्वदा अपनी स्त्रीकी ओर दृष्टि रखनी उचित है ॥ १८ ॥

चण्डालैः सह संपर्कं या नारी कुरुते ततः ॥
विप्रान्दशवरान्कृत्वा स्वयं दोषं प्रकाशयेत् ॥ १९ ॥
आकंठसंमिते कूपे गोमयोदककर्दमे ॥

यदि ब्राह्मणने अशुद्ध पदार्थ, वीर्य, गौका मांस और चांडालके यहांके अन्नका भक्षण कर लिया हो तो चांद्रायण व्रतके करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ १ ॥ और यदि क्षत्रीने इन वस्तुओंको खा लिया हो वह अर्द्धकृच्छ्र चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है और वैश्य इन वस्तुओंके खानेसे प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध होता है॥२॥और शूद्र तो पंचगव्यका पान करे और ब्रह्मकूर्चको पी ले, फिर ब्राह्मण आदि चारों वर्ण क्रमानुसार एक, दो, तीन और चार गौओंका दान करे ॥ ३ ॥

शूद्रान्नं सूतकान्नं च ह्यभोज्यस्यान्नमेव च ॥
शंकितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥
यदि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा ॥
ज्ञात्वा समाचरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥

शूद्रका अन्न, सूतकका अन्न, अभोज्यका अन्न, शंकित अन्न, उच्छिष्ट अन्न॥ ४ ॥ इन अन्नोंको यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे या विपत्ति आनेके समय खा ले तो उसको जान कर कृच्छ्र व्रत करे और पवित्र करने वाले ब्रह्मकूर्चका पान करे ॥ ५ ॥

व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं यदा ॥
तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥

जिसे सर्प, नौला, बिलाव आदिने जूँठा कर दिया हो वह अन्न तिल और कुशका जल छिडकनेसे निःसन्देह शुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्त्वान्नं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥
क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

अभोज्य अन्नको खाने वाला शूद्र भी पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध हो जाता है; यदि अभोज्य अन्नको क्षत्रिय तथा वैश्य खा ले तो वह प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ७ ॥

एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ॥
यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥
मोहाद्भुंजीत यस्तत्र पंक्तावुच्छिष्टभोजने ॥
प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सांतपनं तथा ॥ ९ ॥

एक पंक्तिमें एक साथ भोजन करते हुए ब्राह्मणोंमेंसे यदि कोई ब्राह्मण भोजन करनेसे खडा हो जाय तो उस शेष अन्नको कोई ब्राह्मण भी न खाय ॥ ८ ॥ यदि इस अवस्थामें कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे उस पंक्तिमें उच्छिष्टको खा ले तो उस ब्राह्मणको सांतपन कृच्छ्रका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ९ ॥

पीयूषं श्वेतलशुनं वृंताकफलगृंजने ॥
पलांडुं वृक्षनिर्यासान्देवस्वं कवकानि च ॥ १० ॥

उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानाद्भुंजते द्विजः ॥
त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

पेवची, श्वेत लहसन, बैंगन, गाजर, प्याज, वृक्षका गोंद देवताका द्रव्य, कवक (पृथ्वीकी ढाल)॥ १० ॥ ऊंटनी तथा भेडका दूध जो ब्राह्मण इन वस्तुओंको अज्ञानतासे खाता है वह तीन रात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ ११ ॥

मंडूकं भक्षयित्वा तु मूषिकामांसमेव च ॥
ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

जो ब्राह्मण जान बूझकर मेंडक और मूंसेके मांसको खाता है वह अहोरात्रमें जौके खानेसे शुद्ध हो जाता है ॥ १२ ॥

क्षत्रियश्चापि वैश्यश्च क्रियावंतौ शुचिव्रतौ ॥
तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥ १३ ॥

क्षत्री हो या वैश्य हो जब कि वह क्रिया करने वाले धर्माचरणकारी और पवित्रात्मा हैं तब उनके यहां हव्यमें सर्वदा ब्राह्मण भोजन कर सकते हैं ॥१३॥

घृतं क्षीरं तथा तैलं गुडं तैलेन पाचितम् ॥
गत्वा नदीतटे विप्रो भुंजीयाच्छूद्रभाजने ॥ १४ ॥
मद्यमांसरतं नित्यं नीचकर्मप्रवर्तकम् ॥

स्वकर्मनिरतान्नित्यं ताञ्छूद्रान्न त्यजेद्द्विजः ॥ १६ ॥

ब्राह्मण नदीके किनारे जा कर शूद्रके पात्रमें घी, दूध, तेल, और तेलसे पके हुए गुडको खा ले ॥ १४ ॥जो शूद्र मदिरा मांस खाता,नीच कर्म करता हो उस शूद्रको श्वपाकके समान दूरसे ही त्याग दे ॥ १५ ॥ जो शूद्र ब्राह्मणोंकी सेवा करता हो,मदिरा मांसको न खानेवाला अपने कर्ममें तत्पर हो उस शूद्रका ब्राह्मणोंको त्याग करना उचित नहीं ॥ १६ ॥

अज्ञानाद्भुंजते विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा ॥
प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥
गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतके ॥
वैश्ये पंचसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥ १८ ॥
ब्राह्मणस्य यदा भुंक्ते द्विसहस्रं तु दापयेत् ॥
अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्ध्यति ॥ १९ ॥

(प्रश्न) जो ब्राह्मण अज्ञानतासे सूतक वा मृतकमें भोजन करते हैं तो वर्ण वर्णके प्रति उनका किस प्रकारसे प्रायश्चित्त कहा है ?॥ १७ ॥ (उत्तर) शूद्रके यहां सूतकमें भोजन करनेसे आठ हजार गायत्रीका जप करनेसे शुद्धि होती है,वैश्यके यहां सूतकमें भोजन करनेसे पांच हजार गायत्रीका जप करे और क्षत्रियके यहां सूतकमें भोजन करनेसे तीन हजार गायत्रीका जप करनेसे शुद्धि हो जाती है ॥१८॥परन्तु ब्राह्मणके यहां सूतकमें खानेसे दो हजार गायत्रीका जप करे अथवा वामदेव ऋषिके कहेहुए साममंत्रसे ही शुद्धि हो जाती है ॥१९॥

शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेषेण चाहृतम् ॥
पक्कं विप्रगृहे भुंक्ते भोज्यं तं मनुरब्रवीत् ॥ २० ॥
आपत्काल तु विप्रेण भुंक्तं शूद्रगृहे यदि ॥
मनस्तापेन शुद्ध्येत द्रुपदां वा सकृज्जपेत् ॥ २१ ॥

शूद्रके यहांका अन्न, गोरस और स्नेह (घी आदि) यह यदि शूद्रके यहांसे लाकर ब्राह्मण घर पका कर खा ले तो वह भोजनके योग्य है, यह मनुजीका वचन है ॥ २० ॥ यदि आपत्तिके समयमें ब्राह्मणने शूद्रके यहां भोजन कर लिया हो तो यह मनके पश्चात्तापसे ही शुद्ध हो जाता है और फिर एक वार द्रुपदा मन्त्रका जप करे ॥ २१ ॥

दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ॥
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ २२ ॥

दास, नाई, गोपाल,कुलका मित्र,अर्द्धसीरी इन सबके यहांका और अपने आप स्वयं इस भांति कह दे कि मैं आपका हूं, उसके यहांका अन्न भोजन करनेके योग्य है ॥ २२ ॥

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ॥
असंस्काराद्भवेद्दासः संस्कारादेव नापितः ॥ २३ ॥
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः ॥
स गोपाल इति ख्यातो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २४ ॥
वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ॥
स ह्यार्द्धिक इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २५ ॥

जो सन्तान ब्राह्मणसे शूद्रकी कन्यामें उत्पन्न हो यदि उसका संस्कार न हो तो वह दास कहाता है और जो संस्कार हो जाय तो वह नाई होता है ॥ २३ ॥ जो पुत्र शूद्रकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न हो वह गोपाल कहाता है, उसके यहां ब्राह्मण निस्संदेह भोजन करे ॥ २४ ॥ जो पुत्र ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्न हो और उसका संस्कार हो जाय उसे आर्द्धिक कहते हैं, उसके यहां भी ब्राह्मणको भोजन करनेमें कुछ दोष नहीं है ॥ २५ ॥

भांडस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः॥
अकामतस्तु यो भुंक्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ २६ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा तूपसर्पति ॥
ब्रह्मकूर्चोपवासेन याज्यवर्णस्य निष्कृतिः ॥ २७॥

ब्रह्मकूर्च दहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवेंधनम् ॥
पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवताभिरधिष्ठितम् ॥ ३९ ।
वरुणश्चैव गोमूत्रे गोमये हव्यवाहनः ॥
दध्नि वायुः समुद्दिष्टः सोमः क्षीरे घृते रविः ॥ ४० ॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशाका जल यही सम्पूर्ण पापोंका नाशकारी पवित्र पंचगव्य कहाता है ॥ २९ ॥ काली गौका मूत्र, सफेद गौका गोबर, तांबेके रंगकी गौका दूध, लाल गौका दही, ॥३०॥ कपिला गौका घी, अथवा सम्पूर्ण वस्तुएँ कपिलाहीकी ले ले एक पल गोमूत्र, आधे अँगूठेभर गोमय ॥ ३१॥ सात पल दूध, तीन पल दही, एक पल घी और एक पल कुशाका जल हो ।।३२।। गायत्री पढकर गोमूत्र ग्रहण करे, "गंधद्वारा०" इस मंत्रसे गोबर, "आप्यायस्व०" इस मंत्रसे दूध, "दधिक्राव्ण०" इससे दही ले ।।३३।। "तेजोसि शुक्र०" इस मंत्रसे घी ले, "देवस्य त्वा०" इस मंत्रसे कुशाका जल ले, इस भाँति ऋचाद्वारा पवित्र किये पंचगव्यको अग्निके सम्मुख रक्खे।।३४।। "आपोहिष्ठा०" इस मंत्रसे चलावे, "मानस्तोके०" इस मंत्रसे मथे, कमसे कम सात और तोतेके समान रंगवाली, अग्रभागयुक्त ॥ ३५ ॥ उन कुशाओंसे विधिसहित उठाकर पंचगव्यका हवन करे, "इरावती" "इदंविष्णु" "मानस्तोके०" "शंवती" ॥ ३६ ॥ इन ऋचाओंसे हवन करे और शेषको ब्राह्मण पान करे, ओंकारसे ही चला कर और ओंकारसे ही मथ कर॥३७॥ ओंकारसे ही उठावे और ओंकारसे ही पिये। जो त्वचा और अस्थियोंमें देहधारियोंका पाप स्थित है ॥३८॥ ब्रह्मकूर्च उसको इस भांति दग्ध कर देता है जिस भांति इंधनको अग्नि भस्म कर देती है; यह पंचगव्य तीनों लोकोंको पवित्र करने वाला और देवताओंसे अधिष्ठित है, कारण कि ॥ ३९॥ वरुण गोमूत्रमें, अग्नि गोबरमें, पवन दहीमें, चंद्रमा दूधमें और सूर्य घीमें निवास करते हैं ॥ ४० ॥

पिबतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ॥
अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ४१ ॥

यदि मनुष्यके जल पीते हुए समयमें मुँहमेंसे जल निकल कर पात्रमें गिर पडे तो वह जल पीने योग्य नहीं रहता; और जो यदि उसे पी भी ले तो वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है ॥ ४१ ॥

कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वसृगालौ च मर्कटम् ॥
अस्थिचर्मादिपतितः पीत्वाऽमेध्या अपो द्विजः ॥ ४२ ॥
नारं तु कुणपं काकं विड्वराहं खरोष्ट्रकम् ॥
गावयं सौप्रतीकं च मायूरं खड्गकं तथा ॥ ४३ ॥

वैयाघ्रमार्क्षं सैंहं वा कूपे यदि निमज्जति ॥
तडागस्याप्यदुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥ ४४ ॥
प्रायश्चित्तं भवेत्पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः ॥
विप्रः शुध्येत्त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥ ४५ ॥
एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्ध्यति ॥ ४६ ॥

जिस कुएमें कुत्ता, गीदड, बंदर, अस्थि, चर्म यह गिर गये हो उस कुएके अपवित्र जलको पीने वाला ब्राह्मण ॥ ४२ ॥ और मनुष्यका शरीर, कौआ, विष्ठा खाने वाला सूकर, गधा, ऊंट, गवय (नीलगाय), हाथी, मोर, गैंडा ॥ ४३ ॥ भेडिया, रीछ, सिंह यदि यह कुएमें डूब जायँ और निषिद्ध तालाबके जलको पीनेवाला मनुष्य ॥ ४४ ॥ इन सबका क्रमानुसार प्रायश्चित्त इस भांति है; ब्राह्मण तीन रात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होता है, क्षत्रिय दो दिनके उपवास करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥४५॥ वैश्य एक ही दिन उपवास करनेसे शुद्ध होता है, शूद्र नक्त व्रतके करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥४६॥

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥
अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ४७ ॥
अपचस्य तु यद्दानं दातुरस्य कुतः फलम् ॥
दाता प्रतिगृहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥ ४८ ॥

जो परपाकनिवृत्त (इसका लक्षण आगे कहेंगे) हो उसका अन्न और जो परपाकरत (इसका लक्षण आगे कहेंगे) हो उसका अन्न और अपच (लक्षण आगे कहेंगे) का अन्न खानेसे ब्राह्मणको चांद्रायण व्रत करना उचित है ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य अपचको दान देता है

शूद्रका अन्न, शूद्रके साथ मेल, शूद्रके साथ एक जगह बैठना, शूद्रसे ज्ञान लेना यह प्रतापवान् मनुष्यको भी पतित कर देते हैं ॥ ३२ ॥जो ब्राह्मण शूद्रीसे भोजन बनवाता है या जिसकी शूद्री स्त्री हो वह ब्राह्मण पितर और देवताओंसे वर्जित है और अन्तमें रौरव नरकको जाता है ॥ ३३ ॥ मृतकके सूतकमें खानेसे जिसका अंग पुष्ट हुआ हो और जो शूद्रके यहांका अन्न भोजन करता हो वह न जाने किस २ योनिमें जन्म लेता है ॥ ३४ ॥ परन्तु मनुने इस भांति कहा है कि बारह जन्मों तक गीध, दश जन्मों तक सूकर, सात जन्म तक वह मनुष्य कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है ॥ ३५ ॥

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः ॥
ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥ ३६ ॥

जो ब्राह्मण दक्षिणाके निमित्त शूद्रकी हविका हवन करता है वह ब्राह्मण शूद्र होता है और वह शूद्र ब्राह्मण होता है ॥ ३६ ॥

मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद्द्विजः ॥
भुंजानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥
अर्द्धभुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत् ॥
हतं दैवं च पित्र्यं च ह्यात्मानं चोपघातयेत् ॥ ३८ ॥
भुंजानेषु तु विप्रेषु योऽग्रे पात्रं विमुंचति ॥
स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ॥ ३९ ॥
भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वंति ये द्विजाः ॥
न देवास्तृप्तिमायांति निराशाः पितरस्तथा ॥ ४० ॥
अस्नात्वा वै न भुंजीत तथैवाग्निमपूज्य च ॥
न पर्णपृष्ठे भुंजीत रात्रौ दीपं विना तथा ॥ ४१ ॥

मौन व्रतको धारण कर जो ब्राह्मण बैठे वह न बोले, और जो भोजन करतेमें बोले तो उस अन्नको त्याग दे ॥ ३७ ॥ आधा भोजन करनेके उपरान्त जो ब्राह्मण उसी भोजनके पात्रमें जल पीता है उसके देवता और पितरोंके किये हुए सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं, और वह स्वयं अपनी आत्माको भी नष्ट करता है ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मणोंके भोजन करते समयमें पहले पात्र छोड कर खडा हो जाता है, वह मूढ महापापी और ब्रह्महत्यारा कहाता है ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण भोजन करते समयमें स्वस्ति कहते हैं उन पर देवता तृप्त नहीं होते और उसके पितर भी निराश हो जाते हैं ॥ ४० ॥ स्नान बिना किये और बिना अग्निका पूजन किये भोजन करना उचित नहीं और पत्तेकी पीठ पर बैठ कर तथा रात्रिके समय दीपकके विना भोजन न करे ॥ ४१ ॥

गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवानुचिंतयेत् ॥
पोष्यवर्गार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्ती स बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥
न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ॥
अन्यायेन तु यो जीवेत्सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४३ ॥
अग्निचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः ॥
दृष्टमात्राः पुनंत्येते तस्मात्पश्येत्तु नित्यशः ॥ ४४ ॥
अरणिं कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमणिं घृतम् ॥
तिलान्कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ॥ ४५ ॥

दयावान् गृहस्थ सर्वदा धर्मकी चिन्ता करे और अपने पुत्र वा भृत्य आदिके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये बुद्धिमान् सर्वदा न्यायका वर्ताव करता रहे ॥ ४२ ॥ न्यायसे उपार्जन किये हुए धनसे अपनी रक्षा करे, जो अन्यायसे जीवन व्यतीत करता है वह सब कर्मोंसे बहिष्कृत है ॥ ४३ ॥ अग्निहोत्र करने वाला, कपिला गौ, यज्ञ करने वाला, राजा, भिक्षु (संन्यासी), समुद्र यह देखनेसे ही पवित्र करते हैं, इस कारण इनका दर्शन सर्वदा करे ॥ ४४ ॥ अरणि, काला, बिलाव, चन्दन, उत्तम मणि, घी, तिल, काली मृगछाला, बकरा इनकी रक्षा अपने घरमें करे ॥ ४५ ॥

गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययंत्रितम् ॥
तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्तितम् ॥ ४६ ॥

वेदमंत्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥ ६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण द्विजाति हैं, यह तीनों वर्ण ही श्रुति स्मृति और पुराणमें कहे हुए धर्मके अधिकारी हैं, दूसरा नहीं ॥ ५ ॥ शूद्र जाति चौथा वर्ण है, इसी कारण धर्मका अधिकारी है, परन्तु वेदमन्त्र, स्वधा, स्वाहा और वषटकारादि शब्दोंके उच्चारणका अधिकारी नहीं है ॥ ६ ॥

विप्रवद्विप्रविन्नासु क्षत्रविन्नासु क्षत्रवत् ॥
जातकर्माणि कुर्वीत ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥ ७ ॥
वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥

ब्राह्मणके साथ विधिपूर्वक जो ब्राह्मणकन्या विवाही गयी है उसकी सन्तानके जातकर्म आदि संस्कार ब्राह्मणोंके समान हैं और क्षत्रियके कुलसे जो विवाही गयी है उसकी सन्तानके संस्कार क्षत्रियोंके समान हैं और जो शूद्रकुलसे विवाही गयी है उसकी सन्तानके संस्कार शूद्रके समान होते हैं ॥ ७ ॥ जिस वैश्य कन्याका ब्राह्मण या क्षत्रियने विवाह किया है और वैश्यने शूद्रीके साथ विवाह किया है इन दोनोंकी सन्तानके कर्म शूद्रके समान होते हैं ॥

अधमादुत्तमायां तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥ ८ ॥

नीचे वर्णसे उत्तम वर्णकी कन्यामें जो सन्तान उत्पन्न हो वह शूद्रसे भी नीच कहाती है ॥८॥

ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चंडालो धर्मवर्जितः ॥ ९ ॥
कुमारीसंभवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥
ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चण्डालस्त्रिविधः स्मृतः ॥ १० ॥

ब्राह्मणीमें जो शूद्रसे उत्पन्न हो वह चांडाल होता है, उसको किसी धर्मका अधिकार नहीं ॥ ९ ॥ वह चांडाल तीन प्रकारका है; एक तो वह जो कि कुमारीसे उत्पन्न हो और दूसरा वह जो कि सगोत्र पुरुषद्वारा विवाहिता सगोत्रा स्त्रीमें (व्यभिचारधर्मसे) उत्पन्न हो और तीसरा वह जो कि ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न हो ॥ १० ॥

वर्द्धकिर्नापितो गोप आशापः कुंभकारकः ॥
वणिक्किरातकायस्थमालाकारकुटुंबिनः ॥
वरटो मेदचंडालदासश्वपचकोलकाः ॥ ११ ॥
एतेंऽत्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ॥
एषां संभाषणात्स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥ १२ ॥

वर्द्धकि (बढई) नापित (नाई) और गोप (ग्वाल), कुंभकार, वणिक् (जो लेन देन करे और निषिद्ध जाति हो), किरात, कायस्थ, माली, वरट, मेद, चांडाल, कैवर्त, श्वपच, कोलक, कुटुम्बी (कूटामाली) ॥ ११ ॥ और जो गोमांस भक्षण करते हैं वह सभी अत्यज हैं. इन सबके साथ सम्भाषण करनेसे स्नान करना उचित है; और इनके देखनेसे सूर्य भगवान्का दर्शन करे ॥ १२ ॥

---

१ प्रथममें (९ श्लोकमें) इसीको सबसे निकृष्ट होनेके कारण उत्तम चांडाल कहकर फिर उसीके साथ और दो प्रकारके चांडाल करके दिखानेसे उन दोनोंमें चाडालसादृश्य (तुल्यता) दिखाकर निंद्यत्वबोधन करते हैं जैसा कि आगेके १२ श्लोकमें ११ श्लोकोक्त कतिपय असच्छूद्र महाशूद्रोंका श्वपचादिकोंके साथ पाठ किया है, उसका भी उनमें निंद्यत्वबोधन करनेमें ही तात्पर्य जान लेना ॥

गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतो जातकर्म च ॥
नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥ १३ ॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः ॥
केशांतः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ १४ ॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥
नवैताः कर्णवेधांता मंत्रवर्जं क्रियाः स्त्रियाः ॥ १५ ॥
विवाहो मंत्रतस्तस्याः शूद्रस्यामंत्रतो दश ॥ १६ ॥

१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमंत, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ मुण्डन, ॥ १३ ॥ ९ कर्णवेध, १० यज्ञोपवीत, ११ वेदारंभ, १२ केशांत (ब्रह्मचर्य समाप्त होने पर १६ वें वर्षमें क्षौर), १३ स्नान (समावर्तन अर्थात् ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके यथाशास्त्र स्नान करना), १४ विवाह, १५ विवाहकी अग्निका ग्रहण ॥१४॥

महाशूद्रोंका श्वपचादिकोंके साथ पाठ किया है,उसका भी उनमें निद्यत्वबोधन करनेमें ही तात्पर्य जान लेना ॥

गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतो जातकर्म च ॥
नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥ १३ ॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः ॥
केशांतः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ १४ ॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥
नवैताः कर्णवेधांता मंत्रवर्जं क्रियाः स्त्रियाः ॥ १५ ॥
विवाहो मंत्रतस्तस्याः शूद्रस्यामंत्रतो दश ॥ १६ ॥

१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमंत, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ मुण्डन, ॥ १३ ॥ ९ कर्णवेध, १० यज्ञोपवीत, ११ वेदारंभ, १२ केशांत (ब्रह्मचर्य समाप्त होने पर १६ वें वर्षमें क्षौर), १३ स्नान (समावर्त्तन अर्थात् ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके यथाशास्त्र स्नान करना), १४ विवाह, १५ विवाहकी अग्निका ग्रहण, ॥१४॥ १६ त्रेता (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय इन तीन) अग्नि (अग्निहोत्र) का ग्रहण यह गर्भाधानादि सोलह संस्कार कहे हैं; कर्णवेधतक जो नौ संस्कार हैं वह स्त्रीके विना मंत्र होते हैं ॥ १५ ॥ (ब्राह्मणी) स्त्रीका भी विवाह मन्त्रोंसे होता है और शूद्रोंके यह दशो विना मंत्र होते हैं ॥ १६ ॥

गर्भाधानं प्रथमतस्तृतीये मासि पुंसवः ॥
सीमंतश्चाष्टमे मासि जाते जातक्रिया भवेत् ॥ १७ ॥
एकादशेऽह्नि नामार्कस्येक्षा मासि चतुर्थके ॥
षष्ठे मास्यन्नमश्नीयाच्चूडाकर्म कुलोचितम् ॥ १८ ॥
कृतचूडे च बाले च कर्णवेधो विधीयते ॥
विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्र एकादशे तथा ॥ १९ ॥
द्वादशे वैश्यजातिस्तु व्रतोपनयमर्हति ॥
तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्याद्द्विगुणाधिकः ॥ २० ॥
वेदव्रतच्युतो व्रात्यः स व्रात्यस्तोममर्हति ॥ २१ ॥

गर्भाधान प्रथम रजोदर्शनमें होता है; जब तीन महीनेका गर्भ हो जाय तब पुंसवन संस्कार होता है, सीमंत आठवें महीनेमें होता है, और पुत्र उत्पन्न होनेपर जातकर्म, ग्यारहवें दिन नामकरण, चौथे महीने घरसे बाहर निकालकर बालकको सूर्यदेवका दर्शन कराना होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ और छठे महीने अन्नप्राशन होना, और मुंडन अपने कुलकी रीतिके अनुसार करना उचित है, बालकका जब मुंडन हो जाय तब कर्णवेध करना उचित है ॥ १९ ॥ ब्राह्मणका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष करना, क्षत्रियका ग्यारहवें वर्षमें और वैश्यका बारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत करना उचित है ॥ २० ॥ यदि यज्ञोपवीत होनेकी नियत की हुई अवस्था

निकल जाय वरन उससे दूनी अवस्था बीत जाय और यज्ञोपवीत न हुआ हो तो यह वेदके व्रतसे पतित हो जाते हैं उनको "व्रात्यस्तोम" यज्ञ करना उचित है ॥ २१ ॥

द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात्प्रथमं तयोः ॥
द्वितीयं छंदसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥२२॥
एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो वान्यदोषतः ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥ २३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों जातियोंके जन्म दो होते हैं, पहला जन्म मातके गर्भसे, दूसरा जन्म गुरुके निकट विधिसहित वेदमाता (गायत्री) को ग्रहण करनेमें ॥ २२ ॥ इस भांतिसे यह द्विजत्वको प्राप्त हो कर अन्य दोषोंसे रहित हो कर श्रुति,स्मृति और पुराण इनके पढने योग्य होता है ॥ २३ ॥

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः ॥
बिभृयाद्दंडकौपीनोपवीताजिनमेखलाः ॥ २४ ॥
पुण्येऽह्नि गुर्वनुज्ञातः कृतमंत्राहुतिक्रियः ॥
स्मृत्वोंकारं च गायत्रीमारभेद्वेदमादितः ॥ २५ ॥

होगा तो वह "अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति" इस विधिसे प्रथम पुत्रसन्ततिका ग्राहक हो जायगा।

त्यजन्नदुष्टां दंडयः स्याद्दूषयंश्चाप्यदूषिताम् ॥
ऊढायां हि सवर्णायामन्यां वा काममुद्वहेत् ॥ ९ ॥
तस्यामुत्पादितः पुत्रो न सवर्णात्प्रहीयते ॥

जो मनुष्य निर्दोष स्त्रीका त्याग करता है और जो निर्दोषको दोष लगाता है यह दोनों दंडके भागी हैं; यदि अपने वर्णकी एक स्त्रीसे विवाह कर लिया हो तो दूसरे वर्णकी अन्य-स्त्रीसे भी इच्छानुसार विवाह कर ले ॥ ९ ॥ उस अन्य वर्णकी स्त्रीसे जो पुत्र होता है वह सवर्ण ही होता है;

उद्वहेत्क्षत्रियां विप्रो वैश्यां च क्षत्रियो विशाम् ॥
न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम् ॥ १० ॥

ब्राह्मण क्षत्रिया और वैश्याको विवाहे और क्षत्रिय वैश्याको विवाहे और ब्राह्मण शूद्रीको; और नीच वर्ण उत्तम वर्णकी कन्याको न विवाहे, ॥ १० ॥

नानावर्णासु भार्य्यासु सवर्णा सहचारिणी ॥
धर्म्याधर्मेषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु ॥ ११ ॥

अनेक वर्णकी स्त्रियोंमें जो सवर्णा है वही सहचारिणी है धर्म, वा अधर्ममें है परन्तु वह धर्मिष्ठा है वही अपनी जातिमें बडी भी है ॥ ११ ॥

पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयंभुवा ॥ १२ ॥
पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः ॥
यावन्न विंदते जायां तावदर्द्धो भवेत्पुमान् ॥ १३ ॥
नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः ॥
गुर्वी सा भूस्त्रिवर्गस्य वोढुं नान्येन शक्यते ॥ १४ ॥
यतस्ततोऽन्वहं भर्त्ता स्ववशो बिभृयाच्च ताम् ॥

हे ब्राह्मणो ! यह एक देह पहले ब्रह्माने फाडा है ॥ १२ ॥ आधे देहसे पति और आधेसे स्त्री हुई है यह श्रुतिमें प्रमाण है,जब तक पुरुषका विवाह नहीं होता है तबतक वह असम्पूर्ण है ॥ १३ ॥ ब्रह्मासे कुछ सम्पूर्ण पुरुष ही आधे नहीं होते, यह भी श्रुति है, वह स्त्री धर्म अर्थ कामकी बडी भारी पृथ्वी है, उसे पतिके अतिरिक्त दूसरा नहीं विवाह सकता ॥ १४ ॥ स्त्रीको दूसरा न विवाह सके इस कारण प्रतिदिन स्वतन्त्र होकर उस स्त्रीकी पालना करता रहे;

कृतदारोऽग्निपत्नीभ्यां कृतवेश्मा गृहं वसेत् ॥ १५ ॥
स्वकृतं वित्तमासाद्यवैतानाग्निं न हापयेत् ॥
स्मार्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥ १६ ॥
कर्म कुर्य्यात्प्रतिदिनं विधिवत्प्रीतिपूर्वकः ॥

इसके पीछे विवाह करके अग्नि और स्त्रीके साथ पुरुष घरको निर्माण कर घरमें निवास करे ॥ १५ ॥ अपने उपार्जन किये हुए धनको पाकर वैतानाग्निको न त्यागे, स्मृतिमें कहे हुए कर्म विवाहकी अग्निमें और वेदोक्त कर्म वेतानाग्निमें ॥ १६ ॥ प्रतिदिन विधिसहित उक्त कर्मोंको करता रहे;

सम्यग्धर्मार्थकामेषु दंपतिभ्यामहर्निशम् ॥ १७ ॥
एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः ॥
न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ॥ १८ ॥
भावतोह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्रविधिः परः ॥

स्त्री, पुरुष धर्म, अर्थ, कामोंमें रातदिन भली भांति ॥ १७ ॥ एकमन, एकव्रत और एकवृत्तिसे रहे; स्त्रियोंको त्रिवर्ग त्रिधिसाधन अर्थात् धर्म अर्थ, काम,प्रदायक अनुष्ठान स्वामीसे पृथक् न करना चाहिये ॥ १८ ॥ भावसे वा आज्ञासे यही शास्त्रकी उत्तम विधि है;

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ॥ १९ ॥

॥ २१ ॥ जोडेके पात्रोंको कभी पृथक् न रक्खे, इसके पीछे पात्रोंको शुद्ध कर जल आदिसे भर कर रख दे ॥ २२ ॥ इसके पीछे चौकेसे बाहर रसोईके सब पात्र धोकर मिट्टीसे चूल्हेको लीप उसमें अग्निको रख दे ॥ २३ ॥ वर्तनके पात्रोंको और रसके द्रव्यको स्मरण करके पूर्वाह्नका काम करके अपने माता पिताओंको नमस्कार करे ॥ २४ ॥ माता, पिता, पति, श्वशुर, भाई, मामा, बांधव इनके दिये हुए वस्त्रोंको और आभूषणोंको धारण करै॥ २५ ॥ वह पतिव्रता स्त्री पतिकी आज्ञानुवर्तिनी हो कर मन, वचन और कायसे पवित्र स्वभाव प्रकाश कर छायाके समान पतिके पीछे चले, निर्मल चित्तवाली सखीके समान पतिका हित करे ॥ २६ ॥ स्वामीकी आज्ञा पालन करनेके विषयमें दासीके समान व्यवहार करे, इसके उपरान्त भोजन बनाकर पतिको निवेदन करे ॥ २७ ॥ बलिवैश्वदेवादि कार्यके समाप्त करने पर उस अन्नसे जिमानेके योग्यों (पुत्रआदिकों) को भोजन कराकर फिर पतिको जिमावे; और फिर स्वामीकी आज्ञासे शेष बचे हुए अन्नको आप खाय ॥ २८ ॥ भोजन करनेके उपरान्त शेष दिनको आमदनी और खर्चकी चिन्तासे व्यतीत करे, इसके उपरान्त फिर सन्ध्यासमय और प्रातःकाल घरकी शुद्धि करके ॥ २९ ॥ इसके पीछे व्यंजनादि बना कर साध्वी स्त्री अत्यन्त प्रीतिसे पतिको भोजन करावे और फिर स्वयं भी

तृप्तिके बिना आप खाकर गृहस्थकी नीतिको करके ॥ ३० ॥ उत्तम शय्याको बिछा कर पतिकी सेवा करे, पतिके सो जाने पर पतिमें ही चित्त वाली वह स्त्री पतिके निकट सो जाय ॥ ३१ ॥ निद्राके समयमें नंगी न हो, प्रमत्त न होकर इन्द्रियोंको जीते रहे, ऊँची और कठोर वाणी न कहे, पतिको अप्रिय वचन न कहे ॥ ३२ ॥ किसीके साथ लडाई झगडा न करे, अनर्थकारी और वृथा न बोले, व्यय (खर्च) में अपना मन लगाये रक्खे, धर्म और अर्थका विरोध न करे ॥ ३३ ॥ असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्षा, ठगाई, अत्यन्त मान, चुगलपन, हिंसा, वैर, मद, अहंकार, धूर्तपन ॥ ३४ ॥ नास्तिकपन, साहस, चोरी, दंभ साध्वी स्त्री इन सबका त्याग कर दे; इस प्रकार परमदेवस्वरूप पतिकी सेवा करे स्त्री ॥ ३५ ॥ इस लोकमें कीर्ति और यश तथा सुखको भोग कर परलोकमें पतिके प्राप्त होती है; स्त्रियोंके इस प्रकार नित्य कर्म कहे हैं, इसके आगे नैमित्तिक कर्म कहते हैं॥ ३६॥

रजोदर्शनतो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत् ॥
सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितान्तर्गृहे वसेत् ॥ ३७ ॥
एकाम्बरावृता दीना स्नानालंकारवर्जिता ॥
मौनिन्यधोमुखी चक्षुःपाणिपद्भिरचंचला ॥ ३८ ॥
अश्नीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने ॥
स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ३९ ॥
स्नायीत च त्रिरात्रान्ते सचैलमुदिते रवौ ॥
विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥ ४० ॥
कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् ॥

ऋतुमती होने पर दोषके भयसे सबको त्याग दे; जहां कोई न देख सके लज्जावती हो कर इस भांति निर्जन घरमें निवास करे ॥ ३७ ॥ एक वस्त्रको पहर कर स्नान और आभूषणोंको त्याग कर, दीनके समान मौन धारण कर, नेत्र तथा हाथ पैर इनको न चलावे ॥ ३८ ॥ रात्रिके समयमें एक अन्नका मट्टीके पात्रमें भोजन करे; अप्रमत्ता हो पृथ्वी पर शयन करे, इस भांति तीन दिन बितावे ॥ ३९ ॥ इस भांति तीन दिनके उपरान्त चौथे दिन सूर्यदेवके

स्थानमें चिन्वासे टिकी स्त्रीको ॥४८॥ या जिसे धिक्कार दे दी हो या जिसके साथ बोलना छोड दिया हो उसे दूसरे स्थानमें रख दे; और जब वह ऋतुमती हो तब पूर्वके समान वर्ताव

करे ॥ ४९ ॥ जो स्त्री धूर्त हो, जो धर्म और कामको नष्ट करने वाली हो और जिसके पुत्र न हो, जिसे कोई रोग हो, जो अत्यन्त दुष्ट हो, जिसे कुछ व्यसन भी हो, जो अपना हित न चाहती हो इन स्त्रियोंका अधिवास न करे अर्थात् इनके ऊपर दूसरा विवाह कर ले ॥५०॥ वह अधिविन्ना स्त्री जिस पर दूसरा विवाह भी किया गया है पतिकी अन्य स्त्रियोंके ही समान होती है;

विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता ॥ ५१ ॥
पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ ॥

वह अधिविन्ना स्त्री भी मलिनवर्ण, दीनमुख, देहके संस्कार उबटना आदिको त्याग दे॥५१ और पतिमें व्रत रक्खे, निराहार रहे, पतिके परदेश चले जाने पर शरीरको सुखा दे,

मृतं भर्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत् ॥ ५२ ॥
जीवंती चेत्त्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः ॥

और पतिके मर जाने पर वह ब्राह्मणी पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करे अर्थात् सती हो जाय ॥ ५२ ॥ यदि जीवित रहे तो बालोंको मुडा दे और तपस्या करके शरीरको शुद्ध करे.

सर्वावस्थासु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम् ॥ ५३ ॥
तदेवानुक्रमात्कार्य्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ॥

स्त्रियोंकी सभी अवस्थाओंमें रक्षा नहीं करना योग्य नहीं है ॥ ५३ ॥ इस कारण क्रमानुसार तीनों अवस्थाओंमें पिता, पुत्र आदि स्त्रियोंकी रक्षा करें.

जाताः सुरक्षिताः पापात्पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥
ये यजंति पितॄन्यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमहोदयैः ॥ ५४ ॥

पापसे जिन स्त्रियोंकी रक्षा की जाय उनसे उत्पन्न हुए जो पुत्र पौत्र और प्रपौत्र हैं वे मोक्ष देनेवाले बडा उदय देनेवाले यज्ञों करके पितरोंकी पूजा करते हैं ॥ ५४ ॥

मृतानामग्निहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥
दाहयेदविलंबेन भार्या चात्र व्रजेत सा ॥ ५५ ॥
इति श्रीवेदव्यासीये धर्म्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

और मरे हुए पतिके अग्निहोत्र करके उसकी स्त्रीको भी विधिसहित दग्ध करे, और जिस स्त्रीको इसी अग्निहोत्रकी अग्निमें दाह किया जाता है वह भी स्वर्गमें निवास करती है॥५५॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति कर्म त्रिधा मतम् ॥
त्रिविधं तच्च वक्ष्यामि गृहस्थस्यावधार्य्यताम् ॥ १ ॥

गृहस्थमात्रको नित्य, नैमित्तिक और काम्य यह तीन प्रकारके कर्म कहे हैं. उन तीनों कर्मोंको कहता हूं तुम श्रवण करो ॥ १ ॥

यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत् ॥
आलोक्य मंगलद्रव्यं कर्मावश्यकमाचरेत् ॥ २ ॥

रात्रिके पिछले पहरमें उठ कर विष्णुका स्मरण करे, इसके पीछे मंगल द्रव्योंको देख कर आवश्यकीय कर्मोंको करे ॥ २ ॥

कृतशौचो निषेव्याग्नीन्दन्तान्प्रक्षाल्य वारिणा ॥
स्नात्वोपास्य द्विजः संध्यां देवादींश्चैव तर्पयेत् ॥ ३ ॥

इसके पीछे शौचक्रियाको करके अग्निकी सेवा करे, इसके उपरान्त जलसे दांतोंको धो कर स्नान कर ब्राह्मण सन्ध्या करनेके उपरान्त देवता और पितरोंका तर्पण करे ॥ ३ ॥

वेदवेदांगशास्त्राणि इतिहासानि चाभ्यसेत् ॥

शयनासनसंसर्गकृतकर्मादिदूषिताः ॥
अश्रद्दधानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥
अभोज्यान्नाः स्युरन्नादो यस्य स स्यात्स तत्समः ॥ ५० ॥

शूद्र, जिसे शाप लगा हो, ब्याज लेकर निर्वाह करनेवाला, वाग्दुष्ट, गूंगा, अथवा निरन्तर झूंठ बोलने वाला, कठोरहृदय, चोर, क्रोधी, पतित और बन्धन, बडीहिंसा, बंधनसे जो जीविका करते हैं ॥ ४७ ॥ नट, कलाल, उन्नद्ध, उन्मत्त, व्रात्य जिसने व्रतको छोड दिया हो, नंगा, नास्तिक, निर्लज्ज, चुगल, व्यसनी ॥ ४८ ॥ जिसे कामदेव और स्त्रियोंने जीता हो, असज्जन, दूसरेकी निंदा करनेवाला, असमर्थ और कीर्तिमान् हो कर भी जो राजा और

देवताके द्रव्यको हरण कर ले ॥ ४९ ॥ शय्या, आसन, संसर्ग, व्रतकर्म इनमें जो किसी भाँति दूषित हो और श्रद्धाहीन, पतित, भ्रष्टाचार, नट आदि यह सम्पूर्ण अभोज्यान्न कहे हैं; अर्थात् इनके यहांके अन्नको न खाय, कारण कि जो जिसके यहांके अन्नको खाता है वह उसीके समान हो जाता है ॥ ५० ॥

नापितान्वयमित्रार्द्धसीरिणो दासगोपकाः ॥
शूद्राणामप्यमीषां तु भुक्त्वान्नं नैव दुष्यति ॥ ५१ ॥

नाई, वंशका मित्र, अर्द्धसीरी, दास और गोप इन शूद्रोंके अन्नको खा कर भी दोष नहीं लगता ॥ ५१ ॥

धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः ५२ ॥
स्ववृत्तोपार्जितं मेध्यमाकरस्थमसाक्षिकम् ॥
अश्वलीढमगोघ्रातमस्पृष्टं शूद्रवायसैः ॥ ५३ ॥
अनुच्छिष्टमसंदुष्टमपर्युषितमेव च ॥
अम्लानवाह्यमन्नाद्यमाद्यं नित्यं सुसंस्कृतम् ॥
कृसरापूपसंयावपायसं शष्कुलीति च ॥ ५४ ॥

द्विजोंको परस्परमें यदि वंश (कुल) विदित हो तो धर्म करके एक दूसरेके अन्नको भोजन कर सकते हैं ॥ ५२ ॥ परन्तु उस अन्नको खाय जिसको वह खाने वा खिलानेवालेने अपनी जीविकासे संचय किया हो, और शहतको छोड कर आकरकी वस्तु और जिसको कुत्तेने न सूंघा हो और जिसे गौने न सूंघा हो, जिसे शूद्र और काकने न छुआ हो यह सभी पवित्र हैं ॥ ५३ ॥ उच्छिष्ट न हो, बासी न हो, दुर्गंधि न आती हो इस प्रकार भली भांति बनाये हुए अन्नको नित्य खा ले, खिचडी, मालपुए, मोहनभोग, खीर, पूरी इनको भी खाले ॥५४॥

नाश्नीयाद्ब्राह्मणो मांसमनियुक्तः कथंचन ॥
क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्नन्पतति द्विजः ॥ ५५ ॥
मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥
क्षत्रियो द्वादशोनं तत्क्रीत्वा वैश्योऽपि धर्मतः ॥ ५६ ॥

ब्राह्मण श्राद्धादिकमें बिना नियुक्त मांसभोजन कदापि न करे परन्तु यज्ञमें वा श्राद्धमें नियुक्त होकर ब्राह्मण यदि मांसभोजन न करे तो पतित होता है ॥ ५५ ॥ क्षत्रिय मृगया करके लाये हुए मांससे पितर और देवताओंको पूज कर उनमेंसे आप भी भोजन करे और उसमेंसे बारहवें भागको मोल लेकर वैश्य भी खा ले तो अधर्म नहीं है ॥ ५६ ॥

द्विजो जग्ध्वा वृथा मांसं हत्वाप्यविधिना पशून् ॥
निरयेष्वक्षयं वासमाप्नोत्याचन्द्रतारकम् ॥ ५७ ॥

जो ब्राह्मण वृथा मांस खाता है या जो बिना विधिके पशुओंको मारता है वह अनंत काल तक नरकमें निवास करता है, जब तक चन्द्रमा और तारागण आकाशमें स्थिति करते हैं तभी तक उसका नरकमें वास है ॥ ५७ ॥

सर्वान्कामान्समासाद्य फलमश्वमखस्य च ॥

मृतसूतकपुष्टांगो द्विजः शूद्रान्नभोजने ॥
अहमेवं न जानामि कां योनिं स गमिष्यति ॥ ६३ ॥
शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ॥
स भवेत्सूकरो नूनं तस्य वा जायते कुले ॥ ६४ ॥
गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्तजन्मानि सूकरः ॥
श्वानश्च सप्तजन्मानि हीत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ६५ ॥

जो ब्राह्मण जन्म मरणके सूतकमें अन्न खा कर अपना शरीर पुष्ट करते हैं और जो शूद्रके यहांका भोजन करते हैं वह ब्राह्मण परलोकमें जा कर किस योनिमें जन्म लेंगे, व्यासदेवजी कहते हैं कि यह मैं स्थिर नहीं कर सका ॥ ६३ ॥ शूद्रका अन्न उदरमें रहते हुए जो ब्राह्मण मर जाता है वह परलोकमे सूकरकी योनिमे जन्म लेता है अथवा शूद्रके ही कुलमें जन्म लेता है ॥ ६४ ॥ वह बारह जन्म तक गीध, सात जन्म तक सूकर, और सात जन्मोंतक कुत्ता होता है, यह मनुका वचन है ॥ ६५ ॥

अमृतं ब्राह्मणान्नेन दारिद्र्यं क्षत्रियस्य च ॥
वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्नान्नरकं व्रजेत् ॥ ६६ ॥

ब्राह्मणका अन्न उदरमे स्थित रहने पर यदि मर जाय तो उसकी मोक्ष होती है, क्षत्रियका अन्न उदरमें रहने पर मृतक हो जाय तो दरिद्र होता है वैश्यका अन्न उदरमें रहने पर मर जाय तो शूद्र होता है, और शूद्रके अन्नसे नरककी प्राप्ति होती है ॥ ६६ ॥

यश्च भुंक्तेऽथ शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥
इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते ॥ ६७ ॥
यस्य शूद्रा पचेन्नित्यं शूद्रा वा गृहमेधिनी ॥
वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं याति स द्विजः ॥ ६८ ॥

जो ब्राह्मण निरन्तर एक महीने तक शूद्रका अन्न खाता है वह इसी जन्ममें शूद्र है और मर कर उसे कुत्तेकी योनि मिलती है ॥ ६७ ॥ जिस ब्राह्मणके यहां शूद्रा स्त्री रसोई बनाती हो अथवा जिसकी स्त्री शूद्रा हो वह द्विज पितर और देवताओंसे त्यागा हुआ है और मृत्युके उपरान्त रौरव नरकको जाता है ॥ ६८ ॥

भांडसंकरसंकीर्णा नानासंकरसंकराः ॥
योनिसंकरसंकीर्णा निरयं यांति मानवाः ॥ ६९ ॥

पात्रोंके संकरसे जो संकीर्ण है; जिसतिसके पात्रमें खाले और जिनका मेल अनेक संकरोंमें है और योनिसंकरसे जो संकीर्ण हैं, चाहें जिसके साथ विवाह कर लें, यह सभी मनुष्य नरकमें जाते हैं ॥ ६९ ॥

पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिंदकः ॥
आदेशी वेदविक्रेता पंचैते ब्रह्मघातकाः ॥ ७० ॥

जो पंक्तिमें भेद करता हो और जो वृथापाकी बलिवैश्वदेव न करे, अपने लिये ही अन्न पकावे, ब्राह्मणोंकी निन्दा करता हो और वेदको वेचता हो, जो आज्ञाको करता हो अथवा कुछ द्रव्यके लोभसे पढावे या जप करे, यह पांचों ब्रह्महत्यारे कहे हैं ॥ ७० ॥

इदं व्यासमतं नित्यमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥
एतदुक्ताचारवतः पतनं नैव विद्यते ॥ ७१ ॥
इति वेदव्यासीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥
इति व्यासस्मृतिः समाप्ता ॥ १२ ॥

व्यासजीके विरचित धर्मशास्त्रके संग्रहको मनुष्योंको प्रति दिन पढना आवश्यक है, व्यासजीके कहे हुए आचरणोंको जो करता है उसका पतन नहीं होता, अर्थात् इस शास्त्रोक्त आचरणको करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है और अधर्मका सम्पर्क नहीं होता ॥ ७१ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

व्यासस्मृतिः समाप्ता १२.

शंखस्मृतिः १३.

भाषाटीकासमेता ।

स्वयंभुवे नमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे ॥
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शंखः शास्त्रमकल्पयत् ॥ १ ॥

...ष्टि और संहार करनेवाले स्वयंभू ब्रह्माजीको नमस्कार करके चारों वर्णोंके कल्याणके ... शंखऋषिने शास्त्रको निर्माण किया ॥ १ ॥

यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रिया ॥
प्रतिग्रहश्चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत् ॥ २ ॥
दानं चाध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ॥
क्षत्रियस्य च वैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥
क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम् ॥
कृषिगो क्षवाणिज्यं विशश्च परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानि वाप्यथ ॥

यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और पढाना, प्रतिग्रह और पढना यह छ कर्म ब्राह्मणोंके कहे हैं ॥ २ ॥ दान, पढना और विधिके अनुसार यज्ञ करना; यह तीन कर्म क्षत्रिय और वैश्योंके हैं ॥ ३ ॥ क्षत्रिय जातिका विशेष कर्म प्रजाकी पालना करना है और वैश्यका खेती, गौओंकी रक्षा तथा लेन देन कहा है ॥ ४ ॥ और तीनों जातियोंकी सेवा करना और सम्पूर्ण कारीगरी यह शूद्रका कर्म है.

क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ॥ ५ ॥

विशेष करके क्षमा, सत्य, दम और शौच यह चारों वर्णोंके समान कर्म हैं ॥ ५ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥
तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौंजिबंधनम् ॥ ६ ॥
आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां मौंजीबंधनजन्मनि ॥ ७ ॥
वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विचक्षणैः ॥
यावद्वेदे न जायंते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥ ८ ॥
इति श्रीशंखस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंको द्विजाति कहते हैं, इनका दूसरा जन्म यज्ञोपवीतसे जानना ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंके यज्ञोपवीतके जन्ममें

389

आचार्य पिता और माता गायत्री कही है ॥ ७ ॥ जब तक इनको वेद शास्त्रका अधिकार न हो तब तक पंडित इनको शूद्रके समान जाने और वेदपाठप्रारम्भ अर्थात् यज्ञोपवीत हो जाने पर ब्राह्मण जानना उचित है ॥ ८ ॥

इति शङ्खस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

गर्भस्य स्फुटताज्ञानं निषेकः परिकीर्तितः ॥
पुरा तु स्यंदनात्कार्यं पुंसवनं विचक्षणैः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

गर्भस्य स्फुटताज्ञानं निषेकः परिकीर्तितः ॥
पुरा तु स्पंदनात्कार्यं पुंसवनं विचक्षणैः ॥ १ ॥
षष्ठेऽष्टमे वा सीमंतो जाते वै जातकर्म च ॥
आशौचे च व्यतिक्रांते नामकर्म विधीयते ॥ २ ॥

...ठी भांतिसे प्रकाश पाने पर, निषेककर्म करना कहा है और गर्भके स्पंदन(गर्भके ... प्रथम पंडितोंको पुंसवन संस्कार करना चाहिये ॥ १ ॥ छठे या आठवें महीनेमें ...र सन्तानके उत्पन्न होने पर जातकर्म और सूतकसे निवृत्त होने पर नामकरण संस्कार करना उचित है ॥ २ ॥

नामधेयं च कर्तव्यं वर्णानां च समाक्षरम् ॥
मांगल्यं ब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्य बलान्वितम् ॥ ३ ॥
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥
शर्मांतं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मांतं क्षत्रियस्य तु ॥ ४ ॥
धनांतं चैव वैश्यस्य दासान्तं चांत्यजन्मनः ॥

चारोंवर्णोंका नाम समअक्षरयुक्त रखना उचित है, ब्राह्मणके नामके उच्चारणमें मंगल शब्द हो, क्षत्रियके उच्चारणमें बलयुक्त नाम हो ॥ ३ ॥ वैश्यके नाममें धनयुक्त नाम हो और शूद्रजातिके नाममे निन्दायुक्त शब्द हो; ब्राह्मणके नामके पीछे शर्मा और क्षत्रियके नामके पीछे वर्मा ॥ ४ ॥ वैश्यके नामके अन्तमें धन और शूद्रके नामके अन्तमें दास होना उचित है ।

चतुर्थे मासि कर्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम् ॥ ५ ॥
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ॥

चौथे महीनेमें बालकको सूर्यका दर्शन करावे ॥ ५ ॥ छठे महीनेमें अन्नप्राशन संस्कार करना कर्तव्य है और मुण्डन अपनी २ कुलकी रीतिके अनुसार करे;

गर्भाष्टमेऽब्दे कर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ ६ ॥
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भाद्द्वादशमे विशः ॥
षोडशाब्दानि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः ॥ ७ ॥

विंशतिः सचतुष्का तु वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥
नातिवर्तेत सावित्रीमत ऊर्ध्वं निवर्तते ॥ ८ ॥
विज्ञातव्यास्त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥
सावित्रीपतिता व्रात्याः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ९ ॥

गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करना उचित है ॥ ६ ॥ क्षत्रियका गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत करे और वैश्यका गर्भसे बारहवें वर्षमें करे; ब्राह्मणकी सोलह वर्ष तक, क्षत्रियकी बाईस वर्षतक ॥ ७ ॥ और वैश्यकी चौबीस वर्षतक गायत्री निवृत्त नहीं होती; यह शास्त्रका वचन है, इसके आगे निवृत्त हो जाती है ॥ ८ ॥ जिनका अपने २ समयके अनुसार संस्कार नहीं हुआ है, वह तीनों वर्ण गायत्रीसे पतित और सम्पूर्ण धर्मकर्मोंसे वर्जित हैं अर्थात् शूद्र समान हो जाते हैं ॥ ९ ॥

मौंजीज्यावंधनानां तु क्रमान्मौंज्यः प्रकीर्तिताः ॥
मार्गवैयाघ्रबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणाम् ॥ १० ॥

क्षत्रिया चैव वैश्या च क्षत्रियस्य विधीयते ॥
वैश्या च भार्या वैश्यस्य शूद्रा शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ८ ॥

ब्राह्मणके तीन (ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या) स्त्री, और क्षत्रियके दो (क्षत्रिया, वैश्या) स्त्री होती हैं ॥ ६ ॥ वैश्य और शूद्रके एक २ ही स्त्री होती है, ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या यही तीन ब्राह्मणकी भार्या कही हैं ॥ ७ ॥ क्षत्रियकी क्षत्रिया और वैश्या यह दो भार्या हैं और वैश्यकी वैश्या और शूद्रकी शूद्रा ही भार्या होती है ॥ ८ ॥

आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्या द्विजन्मना ॥
तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्नविधीयते ॥ ९ ॥

विपत्तिकाल होने पर भी द्विजाति शूद्रकी कन्याके साथ विवाह न करे, कारण कि शूद्र-कन्यासे उत्पन्न हुई सन्तानका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है, अर्थात् वह पतित हो जाता है॥९॥

तपस्वी यज्ञशीलस्तु सर्वधर्मभृतां वरः ॥
ध्रुवं शूद्रत्वमायाति शूद्रश्राद्धे त्रयोदशे ॥ १० ॥

तपस्वी, यज्ञशील और सम्पूर्ण धर्मोंमें श्रेष्ठ होने पर भी ब्राह्मण शूद्रके त्रयोदशाह श्राद्ध करनेसे निश्चयही शूद्रके समान हो जाता है ॥ १० ॥

नीयते तु सपिंडत्वं येषां शूद्रः कुलोद्भवः ॥
सर्वे शूद्रत्वमायांति यदि स्वर्ग जितश्च ते ॥ ११ ॥
सपिंडीकरणं कार्यं कुलजस्य तथा ध्रुवम् ॥
श्राद्धद्वादशकं कृत्वा श्राद्धे मासि त्रयोदशे ॥ १२ ॥
सपिंडीकरणं चार्हेत्र च शूद्रः कथंचन ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्या विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जो शूद्र कुलमें उत्पन्न हो कर जिनकी सपिंडी करता है वह चाहें स्वर्ग के जीतने वाले भी क्यों न हों परन्तु सब शूद्र हो जाते हैं ॥११॥ इस कारण कुलमें उत्पन्न हुओंके द्वादशाहका श्राद्ध करके त्रयोदशाह श्राद्धके दिन अवश्य सपिंड न करे ॥ १२ ॥ शूद्र कभी भी सपिंडी करनेके योग्य नहीं है, इस कारण यत्नपूर्वक शूद्रास्त्रीका त्याग कर दे ॥ १३ ॥

---

१ पर कहीं २ चारों वर्णोंकी कन्या लेनेकी आज्ञा ब्राह्मणोंको है, जैसे शबरस्वामीजीको चारों वर्णकी कन्यामें संतान-

''ब्राह्मण्यामभवद्वराहमिहिरो ज्योतिर्विदामग्रणी राजा भर्तृहरिश्च विक्रमनृपः क्षत्रात्मजायामभूत्। वैश्यायां हरिचंद्रवैद्यतिलको जातश्च शंकुः कृती शूद्रायाममरःषडेव शबरस्वामिद्विजस्यात्मजाः॥''

ऐसे लिखे पद्योंसे पाई जाती है; परंतु यह:--

''तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा''

इसीके अनुमोदक वाक्य है, शबरस्वामी सहस्रशाखा सामवेदको 'अर्थतः पाठतश्च' जानते थे और वेदोंका तो कहना ही क्या है? ''सहस्रशाखा ह्यर्थतो वेद शबरः'' यह भाष्यकारका वचन है।

पाणिर्ग्राह्यस्सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ॥
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदेन त्वग्रजन्मनः ॥ १४ ॥

ब्राह्मणके विवाह करनेमें ब्राह्मणी हाथको ग्रहण करे, क्षत्रिया शरको, वैश्या प्रतोद (चाबुक) को ग्रहण करे ॥ १४ ॥

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ॥
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या प्रजावती ॥१५॥
लालनीया सदा भार्या ताडनीया तथैव च ॥
ताडिता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥ १६ ॥
इति शंखस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

जो स्त्री घरमें चतुर हो, जो पतिव्रता हो वा जिसके प्राण पतिमें वसते हों वा जिसके संतान हो वही भार्या है ॥ १५ ॥ भार्याका सर्वदा लालन करता रहे और ताडना भी करे, कारण कि लालना और ताडना करनेसे ही वह स्त्री लक्ष्मीके समान हो जाती है इसमें अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतां पितॄन् ॥
स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियांगं तत्प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥
मलापकर्षणार्थाय स्नानमभ्यंगपूर्वकम् ॥
मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥ ६ ॥

स्नानके विना किये मनुष्य जप, अग्निहोत्रआदिके करनेका अधिकारी नहीं होता, इस कारण प्रातःकालका स्नान नित्यस्नान कहा ॥ २ ॥ चांडाल, शव, पूय, राध और रजस्वला स्त्री इनके स्पर्श करनेके उपरान्त जो स्नान किया जाता है उस स्नानको नैमित्तिक कहा है ॥३॥ पुष्यनक्षत्र आदि समयमें जो ज्योतिषशास्त्रमें कहा हुआ स्नान है उस स्नानको काम्य

कहा है और निष्काम मनुष्य उस स्नानको न करे ॥ ४ ॥ पवित्र मंत्रोंके जपनेके निमित्त या जो देवताओंकी पूजाके निमित्त स्नान किया जाता है उस स्नानको क्रियांग कहा है ॥ ५ ॥ जो स्नान मैलको दूर करनेके निमित्त उबटना आदि लगाकर किया जाता है उस स्नानको मलकर्षण कहा है; कारण कि उस स्नान करनेमें मनुष्यकी प्रवृत्ति मैल दूर करनेके लिये है अन्यथा नहीं ॥ ६ ॥

सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥
क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र महाक्रिया ॥ ७ ॥
तत्र काम्यं तु कर्तव्यं यथावद्विधिचोदितम् ॥
नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियांगं मलकर्षणम् ॥ ८ ॥

नदी, देवताओंके खोदे हुए कुंड, तीर्थ, छोटी २ नदी इनमें जो स्नान किया जाता है उसे क्रियास्नान कहा है, कारण कि इनमें स्नान करना उत्तम कर्म है ॥ ७ ॥ और पूर्वोक्त नदी आदिकोंमें ही काम्य स्नान भली भांतिसे करना योग्य है और नित्य, नैमित्तिक, क्रियांग और मलकर्षण यह चार प्रकारके स्नान हैं ॥ ८ ॥

तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ॥
स्नानं तु वह्नितप्तेन तथैव परवारिणा ॥ ९ ॥
शरीरशुद्धिर्विज्ञाता न तु स्नानफलं भवेत् ॥
अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यंति तीर्थस्नानात्फलं भवेत् ॥ १० ॥

तीर्थके अभावमें गरम जलसे और पूर्वोक्त नदी आदिसे भी भिन्न २ जलसे स्नान करना कहा है; अग्निसे तपाये तथा अन्य मनुष्यके निकाले हुए जलसे जो स्नान है ॥ ९ ॥ वह शरीरकी शुद्धिके निमित्त है, उस स्नानका फल नहीं मिलता, कारण कि तीर्थस्नानसे फलकी प्राप्ति होती है और जलोंसे गात्रकी शुद्धि होती है ॥ १० ॥

सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥
स्नानमेव क्रिया तस्मात्स्नानात्पुण्यफलं स्मृतम् ॥ ११ ॥
तीर्थं प्राप्यानुषंगेण स्नानं तीर्थे समाचरेत् ॥
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलेन तु ॥ १२ ॥
सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा नृणाम् ॥
परास्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः ॥ १३ ॥
सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः ॥
नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाह्नवी तु विशेषतः ॥ १४ ॥

देवताओंके खोदे तालाव, तीर्थ और नदी इनमें स्नान करना ही कर्म है, इस कारण स्नान करनेसे पुण्यफल मिलता है ॥ ११ ॥ जो अकस्मात् तीर्थमें जा कर स्नान किया जाता है वह

स्नान फलका देनेवाला होगा, तीर्थयात्राका फल नहीं होगा ॥ १२ ॥ बुद्धिमानोंने सम्पूर्ण तीर्थोंको मनुष्योंके पापोंका नाश करने वाला और परस्परमें अनपेक्ष कहा है ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण झरने, तालाव, पर्वत, नदी यह सभी पवित्र हैं और विशेष कर श्रीगंगाजी पवित्र हैं ॥ १४ ॥

यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥
सुरापश्च विशुद्ध्येत लक्षजप्यान्न संशयः ॥ ३ ॥

सौ वार गायत्रीका जप करनेसे दिनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और हजार वार गायत्रीका जप करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ २ ॥ जो दशहजार वार गायत्रीका जप करता है उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुकी शय्या पर गमन करनेवाला, मदिरा पीने वाला यह सब एक लाख गायत्रीका जप करनेसे निस्संदेह शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३ ॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः ॥
अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ ४ ॥

जो मनुष्य स्नानके समय सावधान हो कर तीन प्राणायाम करता है वह दिनमें किये हुए पापोंसे उसी समय छूट जाता है ॥ ४ ॥

सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश ॥
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनंत्यहरहः कृताः ॥ ५ ॥

व्याहृति और ॐकारसहित सोलह प्राणायाम प्रतिदिन करनेसे एक महीनेमें मनुष्य गर्भमें-हत्याके पापसे भी मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥

हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी ॥
सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्सला ॥ ६ ॥
शांतिकामस्तु जुहुयात्सावित्रीमक्षतैः शुचिः ॥
हंतुकामोऽपमृत्युं च घृतेन जुहुयात्तथा ॥ ७ ॥
श्रीकामस्तु तथा पद्मैर्बिल्वैः कांचनकामुकः ॥
ब्रह्मवर्चसकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा ॥ ८ ॥

घृतप्लुतैस्तिलैर्वह्निं जुहुयात्सुसमाहितः ॥
गायत्र्ययुतहोमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥
पापात्मा लक्षहोमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥
अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ॥ १० ॥

और जो हवन गायत्रीसे किया जाता है वह सम्पूर्ण मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला है; भक्तिप्रिय और वरकी देनेवाली गायत्री सम्पूर्ण पापोंको नाश करती है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य शांतिकी अभिलाषा करे वह पवित्र हो कर गायत्रीका हवन चावलोंसे करे, और जो अकालमृत्युसे बचनेकी इच्छा करे वह घीसे हवन करे ॥ ७ ॥ और लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाले कमलोंसे हवन करे और सुवर्णकी इच्छा करनेवाला बेलोंसे गायत्रीका हवन करे, ब्रह्मतेजकी इच्छा करनेवाला दूधसे हवन करे ॥ ८ ॥ और भली भांति सावधानीसे घी मिले हुए तिलोंद्वारा दशहजार गायत्रीके हवन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ९ ॥ और पापात्मा मनुष्य लाख गायत्रीके हवन करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है तथा मनवांछित लोकमें जन्म लेकर अभिलषित फलको पाता है ॥ १० ॥

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥
गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥ ११ ॥
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ॥ १२ ॥

वेदोंकी माता गायत्री है और पापोंकी नाश करनेवाली है; इस लोक और स्वर्गमें गायत्रीसे परे पवित्र करनेवाला दूसरा नहीं है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य नरकरूपी समुद्रमें पडे हैं उनका हाथ पकड कर रक्षा करनेवाली गायत्री ही है. इस कारण नियमपूर्वक शुद्धतासे ब्राह्मण नित्य गायत्रीका अभ्यास करे ॥ १२ ॥

गायत्रीजप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ॥
तस्मिन्न तिष्ठते पापमब्बिंदुरिव पुष्करे ॥ १३ ॥
जप्येनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ १४ ॥

गायत्रीमें तत्पर ब्राह्मणको हव्य और कव्यसे जिमावे,कारण कि उस ब्राह्मणमें पाप इस भांति नहीं टिकते कि जैसे कमलके पत्तेके ऊपर जलकी बूंद नहीं ठहरती ॥ १३ ॥ ब्राह्मण गायत्रीके जप करनेसे ही सिद्ध हो जाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं, वह ब्राह्मण चाहे अन्य कर्म करे वा न करे परन्तु तो भी उसको मैत्र कहते हैं ॥ १४ ॥

इसका नाम सांतपन कृच्छ्र है ॥ ८ ॥ और इन सबको तीन दिन करनेसे महासांतपन कहा है ॥ ९ ॥

पिण्याकं वामतक्रांबुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥
उपवासांतराभ्यासात्तुलापुरुष उच्यते ॥ १० ॥

तिलोंकी खल, विना जलका मट्ठा, सत्तू इनको प्रतिदिन खाय और बीच २ में उपवास करनेका नाम तुलापुरुष है ॥ १० ॥

गोपुरीषाशनो भूत्वा मासं नित्यं समाहितः ॥

गोबर और जौको एक महीने तक प्रतिदिन सावधानीसे खाय, यह यावकव्रत है.

व्रतं तु वार्द्धिकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ॥ ११ ॥
ग्रासं चंद्रकलावृद्ध्या प्राश्नीयाद्वर्द्धयन्सदा ॥
ह्रासयेच्च कलाहानौ व्रतं चांद्रायणं स्मृतम् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण पापोंके नाश करने वाले इस वार्द्धिक व्रतको करे उसीको चांद्रायण व्रत भी कहते हैं उसका लक्षण यह है ॥ ११ ॥ चन्द्रमाकी कलाकी भांति वृद्धिके अनुसार एक ग्रास प्रतिदिन खावे और कलाकी हानिके अनुसार एक एक ग्रास प्रतिदिन घटाता जाय, यह चान्द्रायण व्रत है ॥ १२ ॥

मुंडस्त्रिषवणस्नायी अधःशायी जितेंद्रियः ॥
स्त्रीशूद्रपतितानां च वर्जयेत्परिभाषणम् ॥ १३ ॥

पवित्राणि जपेच्छक्त्या जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥
अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा ॥ १४ ॥
पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः संतारिता नराः ॥
गतपापा दिवं यांति नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥

मुण्डन किये हुए त्रिकाल स्नान करे, पृथ्वी पर शयन कर इन्द्रियोंको जीतना, स्त्री, शूद्र, पतित इनके साथ संभाषण न करना ॥ १३ ॥ और पवित्र स्तोत्र आदिका जप, यथा शक्ति हवन करना यह विधि सर्वदा सब कृच्छ्रोंमें जाननी उचित है ॥ १४ ॥ कृच्छ्रोंके प्रतापसे पापी मनुष्य पापोंसे छूट कर स्वर्गमें इस भांति जाता है कि जैसे पापहीन मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १५ ॥

शंखप्रोक्तमिदं शास्त्रं योऽधीते बुद्धिमान्नरः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तस्स्वर्गलोके महीयते ॥ १६ ॥
इति शंखस्मृतौ अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य शंख ऋषिके कहे हुए शास्त्रको पढता है वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट कर स्वर्गलोकमें पूजित होता है ॥ १६ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायाम ष्टादशोऽध्यायः॥ १८ ॥

इति शंखस्मृतिः समाप्ता ॥ १३ ॥

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥ ४ ॥
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥
इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्यो धर्म उच्यते ॥
अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥ ६ ॥

एक दिन तक जितना जल पृथ्वीमें रहजाय ऐसा जलाशय यत्नसहित करे, और जिन जलाशयोंसे गौकी तृषा निवृत्त हो जाय ऐसे जलशयोंका बनाने वाला सात कुलोंको तारता है ॥ २ ॥ भूमिदान करनेसे जो लोक मिलता है वृक्षोंके लगानेसे भी मनुष्योंको वही लोक प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ बावडी, कूप, तालाव, देवताओंके मंदिर इनके टूटने पर जो इनको फिर बनवाता है वह भी पूर्तके फलको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदोंकी रक्षा अभ्यागतका सत्कार और बलिवैश्वदेव इनको इष्ट कहा है ॥ ५ ॥ द्विजातियोंके इष्ट और पूर्त यह साधारण धर्म कहे हैं; और शूद्र केवल पूर्तका अधिकारी है उसे वेदोक्त धर्म इष्ट आदिकोंका अधिकार नहीं है ॥ ६ ॥

यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोयेषु तिष्ठति ॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥

मनुष्यकी अस्थि जब तक गंगाजलमें पडी रहे उतने ही हजार वर्ष तक वह मनुष्य स्वर्गमें निवास करता है ॥ ७ ॥

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलिम् ॥
असंस्कृतमृतानां च स्थले दद्याज्जलांजलिम् ॥ ८ ॥

देवता और पितरोंके निमित्त जलकी अंजली जलमें दे, अर्थात् देवतर्पण और पितृतर्पणके निमित्त जलमें ही जलको डाले; जो बालक संस्कारके विना हुए मर गये हैं उनके लिये जलांजलि स्थलमें दे ॥ ८ ॥

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥
मुच्यते प्रेतलोकात्तु पितृलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् ॥
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १० ॥

जिस प्रेतके एकादश दिन प्रेतके उद्देश्यसे पुत्रआदि अधिकारी वृषका उत्सर्ग करते हैं वह प्रेत प्रेतलोकसे मुक्त हो कर पितृलोकमें जाता है ॥ ९ ॥ मनुष्य बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करे यद्यपि बहुतसे पुत्रोंमेंसे कोई एक तो गयाको जायगा या कोई तो अश्वमेध यज्ञ करेगा अथवा कोई तो नील बैलका उत्सर्ग करेगा वही यथार्थ पुत्र है ॥ १० ॥

वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि ॥
हसंति तस्य भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥ ११ ॥

काशीधाममें जा कर कदाचित् जो मनुष्य निकल आता है तो सब भूत परस्परमें ताली बजा कर उसका उपहास करते हैं (तस्मात् काशी प्राप्त करके क्षेत्रन्यास करके वहां रहना ही श्रेष्ठ है) ॥ ११ ॥

गयाशिरसि यत्किंचिन्नाम्नो पिंडं तु निर्वपेत् ॥
नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

जो मनुष्य गयामें जा कर नामोल्लेख करके गयाशिर पर पिंडदान करता है यदि वह नरकमें भी हो तो भी स्वर्गमें जाता है, और जो स्वर्गमें होय तो उसकी मुक्ति हो जाती है॥ १२ ॥

आत्मनो वा परस्यापि गयाक्षेत्रे यतस्ततः ॥
यन्नाम्ना पातयेत्पिंडं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १३ ॥

अपने सम्बन्धी हों या दूसरेके सम्बन्धी हों जिसका भी नाम ले कर गयामें जो पिंड देता है वह मनुष्य सनातन ब्रह्मपदको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

लोहितो यस्तु वर्णेन शंखवर्णखुरस्तथा ॥
लांगूलशिरसा चैव स वै नीलवृषः स्मृतः ॥ १४ ॥

ततः सन्ध्यामुपासीत शुद्ध्येत तदनन्तरम् ॥ ६० ॥

पूर्वोक्त कर्मोंको करनेवाला दसवार गायत्री पढ जल पिये और फिर सन्ध्योपासन करके शुद्ध होता है ॥ ६० ॥

आर्द्रवासास्तु यत्कुर्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम् ॥
सर्वं तन्निष्फलं कुर्य्याज्जपं होमं प्रतिग्रहम् ॥ ६१ ॥

गीले वस्त्रोंको पहन कर अथवा घुटनोंसे दोनों हाथ बाहर करके जो जप, हवन और प्रतिग्रह किया जाता है, वह उसका सब निष्फल हो जाता है ॥ ६१ ॥

चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥
पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥ ६२ ॥
ऊनाब्दिके द्विरात्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥
शावे मासं तु भुक्त्वा वा पादकृच्छ्रं विधीयते ॥ ६३ ॥

नवश्राद्धमें भोजन कर चांद्रायण व्रत करे, मासिक श्राद्धमें जीम कर पराक व्रत करे और डेढ महीनेके श्राद्धमें और छः महीनेके श्राद्धमें भोजन करके कृच्छ्र करे ॥ ६२ ॥ ऊनाब्दिकमें त्रिरात्र; और बरसीमें एकदिन व्रत करे और शवके अशौचमें खानेवाला एकमहीने तक व्रत करे; अथवा कृच्छ्र करना कहा है ॥ ६३ ॥

सर्पविप्रहतानां च शृंगिदंष्ट्रिसरीसृपैः ॥
आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥ ६४ ॥

जो ब्राह्मण औरसर्पके विषसे, या सींगवाले सरीसृप इनसे मृतक हो गया हो, जो अपनेसे त्यागा गया है इनका श्राद्ध न करे ॥ ६४ ॥

गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥
तं स्पृशंति च ये विप्रा गोजाश्वाश्च भवंति ते ॥ ६५ ॥

जो मनुष्य गौके आघातसे मृतक हो गया है और जो बंधनसे मर गया है, वा ब्राह्मण द्वारा जो निहत हुआ है, इनके शवका जो स्पर्श करता है वह दूसरे जन्ममें गौ, बकरी, घोडा इनकी योनिमें जन्म लेता है ॥ ६५ ॥

अग्निदाता तथा चान्ये पाशच्छेदकराश्च ये ॥
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यंति मनुराह प्रजापतिः ॥ ६६ ॥
त्र्यहमुष्णं पिबेदापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ॥
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ६७ ॥

उनके दाहका कर्ता, और जो फांसीका देनेवाला है, वह तप्तकृच्छ्र करनेसे शुद्ध होता है । यह मनुका वचन है ॥ ६६ ॥ तीन दिन तक गरम जल, तीन दिन तक गरम दूध, तीन दिन तक गरम घी, और तीन दिन तक वायुको भक्षण करके रहे ॥ ६७ ॥

गोभूहिरण्यहरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ॥
यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६८ ॥
उद्यताः सह धावन्ते यद्येको धर्मघातकः ॥
सर्व्वे ते शुद्धिमृच्छन्ति स एको ब्रह्मघातकः ॥ ६९ ॥

गो, पृथ्वी, सुवर्ण, स्त्री, खेत, घर यदि इनको चुरा ले, और जिससे दुःखी हो कर मनुष्य प्राणोंको त्याग दे उसीको ब्रह्महत्यारा कहते हैं ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य धर्म नष्ट करनेके उद्योगसे उद्यत होकर साथ २ जाता है, उनमें जो मनुष्य एकका धर्म नष्ट करता है वह मनुष्य ही एक ही ब्रह्महत्यारा और पापी है, और सब शुद्ध हैं ॥ ६९ ॥

पतितान्नं यदा भुंक्ते भुंक्ते चंडालवेश्मनि ॥
स मासार्द्धं चरेद्वारि मासं कामकृतेन तु ॥ ७० ॥

पतित मनुष्यके यहांका जो मनुष्य अन्न भोजन करे तो चांडालके यहांका भोजन करे या जो अज्ञानतासे भोजन किया हो तो पन्द्रह दिन तक, और जानबूझकर खाया हो तो एक ही महीने तक जलपान करे ॥ ७० ॥

यो येन पतितेनैव स्पर्शे स्नानं विधीयते ॥
तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७१ ॥

इति गौतमस्मृतौ दशमोऽध्यायः ॥१०॥

वैश्यकी खेती व्यवहार पशुओंका पालन, कुसीद सूदके लेनेसे अधिक धर्म है और चौथा वर्ण शूद्र है, एकजाति अर्थात् द्विजातिसंस्कारसे यह हीन होता है, उसके भी यही धर्म हैं: सत्य, क्रोधहीन, शौच, आचमनके निमित्त हाथ पैरोंका धोना और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि श्राद्ध करना भृत्योंकी पालना, शुल्क, फल, सहत, मीठा, मांस, फूल, ओषधि अपने द्वार पर संतोष, उत्तर द्विजातियोंकी सेवा, और उनसे अपनी जीविकाकी इच्छा करता रहे और उनके पुराने जूते, छत्री, वस्त्र, कूर्च तथा कुशाकी मुष्टिको धारण करे, उनका उच्छिष्ट भोजन करे, अपनी इच्छानुसार किसी शिल्पकार्य द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करे, शूद्र सेवाके निमित्त जिसका आश्रय ले वही इसकी पालना करता रहे, दीन अवस्था होने पर उस शूद्र भी प्रतिपालन करे वही इस शूद्रको बडाई देनेवाला है, उसके निमित्त इसके संचय हैं और शूद्रको नमस्कारके मंत्रका भी अधिकार है, कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि पाकयज्ञोंसे शूद्र भी स्वयं पूजन कर ले, और चारों वर्णोंमें पिछले २ पूर्व २ वर्णकी सेवा करे और सज्जन, दुर्जन इनका व्यतिक्षेप तथा उलटापलटीमें दोनों कर्म समान हैं ॥

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः॥१०॥

एकादशोऽध्यायः ११ ।

राजा सर्व्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्ज्जं साधुकारी स्यात् । साधुवादी त्रय्यामान्वीक्षिक्यां चाभिविनीतः। शुचिर्जितेन्द्रियो गुणवत्सहायोपायसंपन्नः समः प्रजासु स्यात् हितं चासां कुर्व्वीत तमुपर्यासीनमधस्तादुपासीरन्नन्ये ब्राह्मणेभ्यस्तेऽप्येनं मन्येरन् । वर्णानामाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् । चलतश्चैनान्स्वधर्म्मे एव स्थापयेत् । धर्मस्योंऽशभाग्भवतीति विज्ञायते । ब्राह्मणं च पुरो दधीत विद्याभिजनवाग्रूपवयःशीलसंपन्नं न्यायवृत्तं तपस्विनम । तत्प्रसूतः कर्म्माणि कुर्व्वीत ब्रह्मप्रसूतं हि क्षत्रमृध्यते न व्यथत इति च विज्ञायते ।

ब्राह्मणके अतिरिक्त राजा सभोका ईश्वर है, वह सर्वदा लोकोंका हित करता रहे; सर्वदा मधुर वचन कहता रहे, कर्मकांड और ब्रह्मविद्यामे शिक्षित, शुद्ध, जितेंद्रिय और जिसको सहायक गुणवान् हों उपायोंसे युक्त होकर सम्पूर्ण प्रजामें समदर्शी रहे उनका हित करता रहे, सबसे ऊँचे आसन पर बैठे हुए उस राजाकी ब्राह्मणके अतिरिक्त और सब जातियें सेवा करे, ब्राह्मण भी उसका मान्य करे जो चारों वर्णोंकी न्यायसे रक्षा करे और आप धर्मके मार्गमें स्थित रह कर धर्मपथसे स्खलित चारों वर्णोंको अपने २ धर्म पर स्थापित करे, वही राजा धर्मके अंशका भागी कहा गया यह बात शास्त्रसे जानी गयी है, विद्या, देश, वाणी, रूप, अवस्था, शीलवान्, न्याययुक्त तपस्वी जो ब्राह्मण है उसे पुरोहित करे. ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ क्षत्रिय अर्थात् ब्राह्मणसे संस्कार किया हुआ कर्मोंको करता रहे, कारण कि ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ (अर्थात् संस्कार किया हुआ) क्षत्रिय बढता है और दुःखी नहीं होता, यह शास्त्रके अनुसार जाना गया है.

योनि च दैवोत्पातचिंतकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्रियेत तदधीनमपि ह्येके योगक्षेमं प्रतिजानते । शांतिपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यमंगलयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेषणसंवलनाभिचारद्विषद्व्यृद्धियुक्तानि च शालाग्नौ कुर्यात् । यथोक्तमृत्विजोऽन्यानि ।

दैविक उत्पातोंकी चिन्ता करनेवालोंने जो कहा है उसको आदरपूर्वक श्रवण करे, कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि योग,क्षेम उनके अधीन है अग्निशालामें ग्रहशांति,पुण्याह, स्वस्त्ययन. आयुर्वृद्धि और मंगलदायक कार्य, नान्दीमुख, शत्रुओंका पराजय, विनाश और पीडादायक कर्मोका अनुष्ठान करे और अन्य कर्मोंको ऋत्विजोंकी आज्ञानुसार करे.

तस्य व्यवहारो वेदो धर्म्मशास्त्राण्यंगान्युपवेदाः पुराणं देशजातिकुलधर्म्माश्चाम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणं कर्षकवणिक्पशुपालकुसीदकारवः स्वे स्वे वर्गे तेभ्यो यथाधिकारमर्थान् प्रत्यवहृत्य धर्म्मव्यवस्थान्यायाधिगमे तर्कोऽभ्युपायः । तेनाभ्यूह्य यथास्थानं गमयेत् । विप्रतिपत्तौ त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्यवहृत्य निष्ठां

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

शूद्रो द्विजातीनभिसंधायाभिहत्य च वाग्दंडपारुष्याभ्यामंगं मोच्यो येनोपहन्यात् । आर्यस्त्र्यभिगमने लिंगोद्धारः स्वप्रहरणं च गोप्ता चेद्वधोऽधिकः । अथाहास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम् । उदाहरणे जिह्वाच्छेदः धारणे शरीरभेदः । आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्दंड्यः शतम् । क्षत्रियो ब्राह्मणाक्रोशे दंडपारुष्ये द्विगुणम् ॥ अध्यर्द्धं वैश्यः । ब्राह्मणः क्षत्रिये पंचाशत् तदर्धं वैश्ये न शूद्रे किंचित् ब्राह्मणराजन्यवत् । क्षत्रियवैश्यौ अष्टापाद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषाम् । प्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमे दंड भूयस्त्वम्

पलहरितधान्यशाकादाने पंचकृष्णलमल्पे पशुपीडिते स्वामिदोषः पालसंयुक्ते तु तस्मिन् पथि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोः पंचमाषा गवि षडुष्ट्रखरे अश्व महिष्योर्दश अजाविषु द्वौ द्वौ सर्व्वविनाशे शतं शिष्टाकरणे प्रतिषिद्धसेवायां च नित्यं चेलपिंडादूर्ध्वं स्वहरणं गोऽग्न्यर्थे तृणमेधोवीरुद्वनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृत्तानाम् ॥

शूद्र यदि किसी द्विजातिके प्रति तिरस्कारसूचक वाक्य कहे और कठोरभावसे आघात करे तब वह जिस अंगसे आघात करे राजा उसके उसी अंगको कटवा दे और अपनेसे बडोंकी स्त्रियोंके संग यदि गमन करे तो उसका लिंग कटवा दे और जो वह स्वयं ही मर जाय या अपनी किसी भांति रक्षा करे तो उसका अधिक दंड यह है कि, राजा उसका वध करे. शूद्र यदि वेदको सुन ले तो राजा शीशे और लाखसे उसके कान भर दे, वेदमंत्रका उच्चारण करने पर उसकी जिह्वा कटवा ले और जो वेदको पढे तो शरीरका छेदन करे, आसन, शयन, वाणी, मार्ग यदि इनमें शूद्र बराबरी करे तो सौ रुपये दंड करे और वैश्य कुछ ऊपर आधा दंड दे, यदि ब्राह्मण क्षत्रियकी निन्दा करे तो पचास रुपये और वैश्यकी निन्दा करने पर पचीस रुपये दंड और शूद्रकी निन्दा करने पर कुछ दंड नहीं है और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रकी निन्दा करनेमें ब्राह्मण और राजाके समान है, विद्वानोंके अवलंघनमें प्रत्येक वर्णको और शूद्रको मणिचोरी करनेका जो पाप होता है वही विद्वानोंकी निन्दा करनेवालोंको होता है, थोडेसे फल, हरिद्रा, धान्य और शाक इनकी चोरीमें पांच कृष्णल (रत्ती सोना,) और किंचित् पशुकी पीडामें खेतके स्वामीको दोष है और ग्वालियोंके साथमें जो खेतको बिगाडै तो पालकोंको दोष है, यदि खेत मार्गमें हो या खेतका आवरण न हो तो खेतके स्वामी और पालक दोनोंको दोष है, गौकी पीडामें पांच मासे सुवर्ण, उंट और खरकी पीडामें छ मासे, घोडे और भैंसकी पीडामें दश मासे, बकरी और भेडकी पीडामें दो मासे सुवर्णका दंड कहा है और यदि सब खेतोंको नष्ट कर दे तो सौ मासे सुवर्णका दंड करना उचित है, शिष्ट शास्त्रमें कहे हुएके न करने और कपडे धोनेसे अन्य निषिद्धोंकी सेवामें धनका हरना लिखा है; गौ और अग्निके निमित्त तृण रखाये हुए वनस्पतियोंके फल रखवालेके न होने पर उन फलोंको अपना समझ कर लेले.

कुसीदवृद्धिर्धर्म्या विंशतिः पंचमासिकी मासं नातिसांवत्सरीमेके चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्य भुक्ताधिर्न वर्द्धते दित्सतोऽवरुद्धस्य च चक्रकालवृद्धिः कारिताकायिकाशिखाऽधिभोगाश्च कुसीदं पशूपलोमजक्षेत्रशतवाह्येषु नापि पंचगुणम् । अजडापोगंडधनं दशवर्षभुक्तं परैः सन्निधौ भोक्तुः न श्रोत्रियप्रव्राजितराजपुरुषैः पशुभूमिस्त्रीणामनतिभोगः रिक्थभाजि ऋणं प्रतिकुर्युः प्रातिभाव्यवणिक्शुल्कमद्यद्यूतदंडान् पुत्रानध्याभवेयुः निध्यं याचितावक्रीताधयो नष्टाः सर्वा

न निंदिता न पुरुषापराधेन स्तेनः प्रकीर्णकेशो मुसली राजानमियात् कर्माचक्षाणः पूतो वधमोक्षाभ्यामघ्नन्नेनस्वी राजा न शारीरो ब्राह्मणदंडः कर्म्मवियोगविख्यापनाविवासनांककरणानि अप्रवृत्तौ प्रायश्चित्ती सः चोरसमः सचिवो मतिपूर्वं प्रतिगृहीताप्यधर्म्मसंयुक्ते पुरुषशक्त्यपराधानुबंधविज्ञानाद्दंडनियोगः

तीन वार स्तुति करे और उसी वास्तुमें "त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्याभिक्रांत्या" यह मन्त्र पढे,यह भी कितने ऋषियोंका वचन है कि, कर्मका प्रारंभ कर जो पवित्र करनेकी अभिलाषा करने वाले हैं वह भी इसी प्रकार होम करे और 'वरो दक्षिणा' इससे स्तुति करे, इसी भांति सामान्यमें भी प्रायश्चित्त है, कठोरता, चुगली, निषिद्ध आचरण, अभक्ष्य भक्षण इनमें और शूद्रा स्त्रीमें वीर्य डाल कर वा आग्रहसे जो दूषित कर्म किया है तो वरुण देवतावाली और जलके चिह्नयुक्त ऋचाओंसे या अन्यान्य पवित्र मंत्रोंसे आचमन करे, मन और वाणीके निषिद्ध आचरणमें पांच व्याहृतियोंसे अथवा सभी व्याहृतियोंसे आचमन करे; प्रातःकालमें "अहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहा" इस मन्त्रसे और सायंकालमें "रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनातु" इस मन्त्रसे आठ समिध रक्खे और "देवकृतस्य" इस मन्त्रद्वारा हवन करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथातः कृच्छ्रान् व्याख्यास्यामः । हविष्यान्प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्ना श्नीयात् । अथापरं त्र्यहं नक्तं भुंजीत । अथापरं त्र्यहं न कंचन याचेत । अथापरं त्र्यहमुपवसेत् । संतिष्ठेदहनि रात्रावासीत क्षिप्रकामः सत्यं वदेत् । अनार्यैर्न संभाषेत । रौरवयौधाजिने नित्यं प्रयुंजीत । अनुसवनमुदकोपस्पर्शनम् । आपोहिष्ठेति तिसृभिः

१ जिस मनुष्यका व्रत भंग हो जाय उसे अवकीर्णी कहते हैं।

पवित्रवतीभिर्मार्जयेत् । हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इत्यष्टाभिः॥ अथोदकतर्पणम्। ॐ नमो हमाय मोहमाय संहमाय धुन्वते तापसाय पुनर्वसवे नमो नमो मौंज्या-यौर्म्याय वसुविंदाय सर्वविंदाय नमो नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्णवे नमो नमो रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यंबकायैकचरायाधिपतये हराय शर्वायेशानाय शिवाय शांतायोग्राय वज्रिणे घृणिने कपर्दिने नमो नमः सूर्यायादित्याय नमो नमो नीलग्रीवाय शितिकंठाय नमो नमः कृष्णाय पिंगलाय नमो नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायेंद्राय हरिकेशायोर्ध्वरेतसे नमो नमः सत्याय पावकाय पावकवर्णाय नमो नमः कामाय कामरूपिणे नमो नमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमो नमस्तीक्ष्णाय तीक्ष्णरूपिणे नमो नमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायोत्तमपुरुषाय नमो नमो ब्रह्मचारिणे नमो नमश्चंद्रललाटाय नमो नमः कृत्तिवाससे पिनाकहस्ताय नमो नमः इति। एतदेवादित्योपस्थानम् । एता एवाज्याहुतयः । द्वादशरात्रस्यांते चरुं श्रप-यित्वैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् । अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इंद्राग्निभ्यामिंद्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति ॥ अथ ब्राह्मणतर्पणम् ॥ एतेनैवातिकृच्छ्रो व्याख्यातः यावत्सकृदाददीत तावद-श्नीयात् अब्भक्षस्तृतीयः सकृच्छ्रातिकृच्छ्रः प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति । द्वितीयं चरित्वा यत्किंचिदन्यत् महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मात्प्रमु-च्यते । तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते । अथैतांस्त्रीन् कृच्छ्रान् चरित्वा सर्वेषु स्नातो भवति सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद ॥

इति गौतमस्मृतौ सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस समय कृच्छ्रव्रतोंके विषयमें कहते हैं,प्रातःकालमें केवल हविष्यान्नको भोजन कर तीन रात्रि तक कुछ न खाय, पीछे तीन दिन तक नक्त व्रत करे, इसके पीछे तीन दिन अयाचित व्रतका अनुष्ठान करे अर्थात् किसीसे कुछ न मांगे, फिर तीन दिन तक उपवास करे, दिनके समय खडा रहे, रात्रिके समय बैठे, बहुत शीघ्र फलकी इच्छा करनेवाला सत्य बोले, दुष्टोंके साथ वार्तालाप न करे, नित्य रुरु, यौध इनकी मृगछाला ओढे,त्रिकालमें आचमन कर "आपो हि ष्ठा" आदि तीन ऋचाओंसे और "हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः" इत्यादि आठ पवित्र ऋचाओंसे मार्जन करे; फिर इस भांति जलसे तर्पण करे कि हम, माहेम, संहम, धुन्वत्, तापस, पुनर्वसु, मौंज्य, और्म्य, वसुविन्द, सर्वविन्द पार, सुपार, महापार, पारयिष्णु, रुद्र, पशुपति, महान् देव, त्र्यंबक, एकचर, अधिपति, हर, शिव, शांत, उग्र, वज्रि,घृणि, कपर्दी, सूर्य, आदित्य, नीलग्रीव, शितिकंठ, कृष्ण, पिंगल, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वृद्ध, हरिकेश, ऊर्ध्वरेतः, सत्य, पावक, पावकवर्ण, काम, कामरूपी, दीप्त, दीप्तरूपी, तीक्ष्ण, तीक्ष्णरूपी, सौम्य, सुपुरुष; महापुरुष, मध्यमपुरुष, उत्तमपुरुष, ब्रह्मचारी, चन्द्रललाट, कृत्तिवासाः,

शूद्रामित्यसंस्कार्यो विज्ञायते ॥ त्रिष्वेव निवासः स्यात्सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसा प्रजननं च ।

प्रकृति और संस्कारके भेदसे चारों वर्णोंका विभाग है और इतना भेद भी है कि इस ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं; गायत्री छंदसे ब्राह्मणकी सृष्टि है, त्रिष्टुभछंदसे क्षत्रीकी सृष्टि है और जगतीछंदके योगसे वैश्यको सृष्टि ईश्वरने की है, अर्थात् उपरोक्त वेदके मंत्रोंसे इनका संस्कार होता है, परन्तु शूद्रकी सृष्टि किसी छंदयोगसे नहीं की इससे ही शूद्र संस्कारके हीन जाना जाता है, प्रथम तीन वर्णोंमें ही संस्कारकी स्थिति है, सम्पूर्ण वर्ण ही सत्यवादी, क्रोधरहित,दानी और हिंसारहित हुए और जातकर्म ही उनका धर्म है ।

पितृदेवतातिथिपूजायां पशुं हिंस्यात् ।
मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्म्मणि ॥
अत्रैव च पशुं हिंस्यान्नान्यथेत्यब्रवीन्मनुः ॥
नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥
नच प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्माद्यागे वधोऽवधः ॥

अथापि ब्राह्मणाय वा राजन्याय वा अभ्यागताय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेदेवमस्यातिथ्यं कुर्वतीति ॥

पितर, देवता और अतिथि इनकी पूजामें पशुकी हिंसा करे, कारण कि मनुका यह वचन है कि मधुपर्कमें,यज्ञमें पितर और देवताओंके निमित्त जो कर्म हैं उनमें पशुकी हिंसा करे तो कुछ दोष नहीं है, अन्यथा हिंसा न करे; विना प्राणियोंकी हिंसा किये मांस कहीं उत्पन्न नहीं होता, प्राणियोंकी हिंसा भी स्वर्गको देनेवाली है, इस कारण यागयज्ञमें जो प्राणियोंकी हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है, विना हिंसाके हुए स्वर्ग नहीं मिल सकता, ब्राह्मण वा क्षत्रियके अभ्यागत होने पर इनके लिये बडा बैल वा बडा बकरा पकावे, इस प्रकार इसके आतिथ्य करनेका नियम है ।

उदकक्रियामशौचं च द्विवर्षात्प्रभृति मृत उभयं कुर्यात् । दंतजननादित्येके । शरीरमग्निना संयोज्य । अनवेक्षमाण आपोऽभ्यवयंति ततस्तत्रस्था एव सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वंति । अयुग्मा दक्षिणामुखाः । पितृणां वा एषा दिक् या दक्षिणा । गृहान्व्रजित्वा स्वस्तरे अहमश्नत आसीरन् । अशक्तौ क्रीतोत्पन्नेन वर्तेरन् ।

दो वर्षसे अधिक अवस्थामें मरे तो जलदान और अशौच दोनोंही करने उचित हैं और कोई २ ऐसा भी कहते हैं, कि यदि बालकके दांत जमआये हों तब वह मर जाय तो दोनों कर्मोंका करना उचित है, मृतकके शरीरमें अग्नि लगाकर चिताकी ओरको विना देखे जलकी ओरको चला आवे और जलमें खडा हो कर दोनों हाथोंसे जलदान करे और अयुग्म तथा दक्षिण दिशाको मुख करे; कारण कि दक्षिण दिशा पितरोंकी है, फिर घरमें जा कर तीन दिन तक उपवास कर अच्छे आसन पर बैठे, शक्तिके न होने पर मोल ले कर खा ले ।

दशाहं शावमाशौचं सपिंडेषु विधीयते । मरणात्प्रभृतिदिवसगणना । सपिंडता सप्तपुरुषं विज्ञायते । अप्रत्तानां स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते । प्रत्तानामितरे कुर्वीरन् तांश्च तेषां जननेऽप्येवमेव निपुणां शुद्धिमिच्छतां मातापित्रोर्बीजानि निमित्तत्वात् ।

सपिंडियोंमें मरण अशौच दश दिन तक होता है और मरनेके दिनसे दिनोंकी गिनती है, सात पीढी तक सपिंड जाने जाते हैं और कुमारी कन्याओंके मरनेका अशौच ती-

पीढियोंमें तीन दिन तक होता है और विवाही हुई कन्याओंका आशौच जहां कन्या विवाही हो वहीं होता है; इसी भांति उन कन्याओंके जन्मसूतकमें भी भली भांति शुद्धिकी इच्छा करनेवालोंको अशौच है. कारण कि, माता और पिता बीजके निमित्त हैं,

अथाप्युदाहरंति--

नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

अस्वतंत्रा स्त्री पुरुषप्रधाना अनग्निरनुदक्या च अनृतमिति विज्ञायते ।
पुरुष स्वतंत्र है और स्त्री पराधीन है, अग्निहोत्रसे हीन और जप तथा दानके अयोग्य है, झूंठ रूप है यह शास्त्रसे जाना जाता है ।

अथाप्युदाहरंति--

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥
तस्या भर्तुरभिचार उक्तः प्रायश्चित्तरहस्येषु ।

इस विषयमें यह भी वचन है कि बाल्यावस्थामें पिता रक्षा करता है, यौवनअवस्थामें पति रक्षा करता है और वृद्धावस्थामें स्त्रीकी रक्षा करनेवाला पुत्र है, स्त्री कभी स्वाधीन नहीं हो सकती और प्रायश्चित तथा क्रीडाके समयमें स्त्रीको पतिका अवलंबन कहा है;

मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ त्रिरात्रं रजस्वलाऽशुचिर्भवति । सा नाञ्ज्यान्नाभ्यंज्यान्नाप्सु स्नायात् । अधः शयीत दिवा न स्वप्यात् नाग्निं स्पृशेत् न रज्जुं प्रमृजेन्न दंतान्धावयेन्न मांसमश्नीयात् न ग्रहान्निरीक्षयेत् न हसेन्न किंचिदाचरेन्नांजलिना जलं पिबेत् न खर्परेण वा न लोहितायसेन वा विज्ञायते हींद्रस्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं हत्वा पाप्मना गृहीतो मन्युत इति । तं सर्वाणि भूतान्यभ्याक्रोशन् भ्रूणहन् भ्रूणहन् भ्रूणहन्निति स स्त्रिय उपाधावत् अस्यैमे ब्रह्महत्यायै तृतीयभागं गृह्णीतेति गत्वैवमुवाच ता अब्रुवन् किन्नोऽभूदिति सोऽब्रवीद्वरं वृणीध्वमिति ता अब्रुवन्नृतौ प्रजां विंदामह इति कामं मा विजानीमोऽलं भवाम इति यथेच्छया आप्रसवकालात्पुरुषेण सह मैथुनभावेन संभवाम इति च एषोऽस्माकं वरस्तथेंद्रेणोक्तास्ताः प्रतिजगृहुः तृतीयं भ्रूणहत्यायाः सैषा भ्रूणहत्या मासि मास्याविर्भवति । तस्माद्रजस्वलान्नं नाश्नीयात् । अतश्च भ्रूणहत्याया एवैतद्रूपं प्रतिमुच्यास्ते कंचुकमिव ।

ऐसा कहा है कि, महीने २ में ऋतुमती होनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, वह स्त्री रजस्वला होने पर तीन दिन तक अशुद्ध रहती है, रजस्वला स्त्री नेत्रोंमें अंजन न लगावे, उबटन न करे जलमें स्नान न करे, पृथ्वी पर शयन करे, अग्निका स्पर्श न करे और रस्सीको न धोवे, दांतोंको न धोवे, मांसको न खाय, घरको न देखे, हँसे नहीं और कुछ कर्म न करे, छोटे पात्रमें अंजुलिसे जल न पिये और लोहेके पात्रसे भी जल पीनेका निषेध है, यह शास्त्रसे जाना गया है, कि इन्द्रने तीन शिरवाले त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको मार कर अपनेको पापसे गृहीत माना तब उस इन्द्रको सब प्राणियोंने इस प्रकार कोशा कि, हे ब्रह्महत्या करनेवाले ३ तब वह इन्द्र स्त्रियोंके निकट जा कर यह बोला कि इस मेरी ब्रह्महत्याका पापका तीसरा

भाग तुम ग्रहण करो, स्त्रियोंने यह सुन कर कहा कि हमें क्या होगा, तब इन्द्रने कहा कि वर मांगो तब स्त्रियोंने कहा कि हमें ऋतुकालमें सन्तानकी प्राप्ति हो, तब इन्द्रने कहा कि हम आज्ञा देते हैं और प्रसन्न हो कर कहते हैं कि तुम्हें इच्छानुसार सन्तानकी प्राप्ति हो, फिर स्त्रियोंने कहा कि गर्भके रहने पर भी सन्तान होनेके समय तक हम पुरुषके साथ मैथुन कर-सकें एक वर हमको यह भी मिले; तब इन्द्रने कहा कि "अच्छा" ऐसा ही होगा, तब वह स्त्रियें उस हत्याका तीसरा भाग ग्रहण करती हुई, प्रत्येक महीने २ में वही हत्या प्रगट होती है; इस कारण रजस्वला स्त्रीने अन्न नहीं खाना इसी कारण रजस्वला स्त्री रजरूपी ब्रह्महत्याको महीने महीनेमें छोडके मुक्त होती है जैसे सर्प केंचलीको छोडके मुक्त हो जाता है।

तदाहुर्ब्रह्मवादिनः । अंजनाभ्यंजनमेवास्या न प्रतिग्राह्यं तद्धि स्त्रियोऽन्नमिति । तस्मात्तस्यास्तत्र न च मन्यंते आचारा याश्च योषित इति सेयमुपयाति । उदक्यायास्त्वासते तेषां ये च केचिदनग्नयो गृहस्थाः श्रोत्रियाः पापाः सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यही ब्रह्मवादियोंने कहा है कि; रजस्वला स्त्री अंजन न लगावे, उबटन न लगावे, इस निमित्त ऐसी स्त्रीका अन्न लेना उचित नहीं, इस कारण उस समय उस अवीरा स्त्रीको इन कार्य्योंमें ब्रह्मवादियोंकी सम्मति नहीं है । जो रजस्वला स्त्रीके साथ संभोग करते हैं, जो

शूद्रान्नरसपुष्टांग अधीयानोऽपि नित्यशः ॥
नित्यं हुत्वा यजित्वापि गतिमूर्ध्वां न विंदति ॥ २६ ॥
शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥
स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ २७ ॥
शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति ॥
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा न च स्वर्गार्हको भवेत् ॥ २८ ॥

जिसका शरीर शूद्रके अन्नसे पुष्ट है वह चाहे नित्य वेद पढता हो और अग्निहोत्र तथा यज्ञको भी करता हो परन्तु तो भी वैकुण्ठको नहीं प्राप्त हो सकता; जिस ब्राह्मणके मरते समय शूद्रका अन्न उदरमें रह जाता है वह सूकरकी योनि पाता है, अथवा शूद्रके कुलमें जन्म लेता है, शूद्रके अन्नको भोजन कर मैथुन करनेसे जो पुत्र उत्पन्न होता है वह पुत्र जिसके अन्न खानेसे उत्पन्न हुआ है उसीका है, इसी कारण वह स्वर्गके जाने योग्य नहीं है।

स्वाध्यायाढ्यं योनिमित्रं प्रशांतं चैतन्यस्थं पापभीरुं बहुज्ञम् ॥
स्त्रीयुक्तान्नं धार्मिकं गोशरण्यं व्रतैः क्षांतं तादृशं पात्रमाहुः ॥ २९ ॥

जो वेदके पढनेमें युक्त है, जातिका मित्र, शांतस्वभाव, चैतन्य (ब्रह्म)में स्थिति, पापसे डरनेवाला, बहुत जन और स्त्रीका पालन पोषण करनेवाला, धर्मज्ञ, गौओंकी रक्षा करनेवाला और जो व्रतोंसे थका हो उसको पात्र कहते हैं ॥२९॥

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥
विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं रसाश्च ते ॥ ३० ॥
एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमश्वं महीं तिलान् ॥
अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत् ॥ ३१ ॥

कच्चे पात्रमें रक्खा हुआ जो दूध, दही तथा सहत है जिस भाँति पात्रकी दुर्बलतासे वह पूर्वोक्त रस और वह पात्र नष्ट हो जाता है उसी प्रकार जो मूर्ख गौ, सुवर्ण, वस्त्र, घोडा, पृथ्वी, तिल, जौ इनको ग्रहण करता है वह काष्ठके समान भस्म हो जाता है ॥३०॥३१॥

नांगं नखं च वादित्रं कुर्यान्नचापोंऽजलिना पिबेत् ॥ न पादेन न पाणिना वा राजानमभिहन्यात् । न जलेन जलं नेष्टकाभिः फलानि पातयेत् न फलेन फलं न कल्कपुटको भवेत् । न म्लेच्छभाषां शिक्षेत् ।

अंग और नखोंसे बाजा न बजावे, हाथकी अंजुलीसे जल न पिये और राजाको पैर तथ हाथसे न मारे और जलसे जलको न मारे ईंट मार कर फलको न तोडे, कल्कको दोनोंमें न रक्खे, म्लेच्छोंकी भाषा न सीखे ।

अथाप्युदाहरंति--

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत् ॥
न चांगचपलो विप्र इति शिष्टस्य गोचरः ॥
पारंपर्यागतो येषां वेदः सपरिबृंहणः ॥
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥
यत्र संत नचाक्षंतं नासतं न बहुश्रुतम् ॥
न सुवृतं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मण इति ॥
इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस विषयमें यह भी कहा है कि, हाथ, पैर, नेत्र आदि अंग इनको चपल न करे और यह शिष्टोंका वचन है कि अंगप्रत्यंगसम्पन्न वेद जिन ब्राह्मणोंके वंशमें परम्परासे चला आया

त्रिरात्रमब्भक्षोऽहोरात्रमुपवासेन् । अश्वमेधावभृथं गच्छेद्व्रात्यस्तोमेन वा यजेत् ।

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

गर्भसे लगा कर आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करे और गर्भसे लगा कर ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका और गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्यका यज्ञोपवीत करानेकी विधि है, ब्राह्मणका दंड ढाक वा बेलके वृक्षका है और क्षत्रियका दंड वटके वृक्षका है और वैश्यका दंड गूलरके वृक्षका है, काले मृगकी छाल ब्राह्मणका दुपट्टा है, रुरु मृगका चर्म क्षत्रियका और गौ या छागका चर्म वैश्यका वस्त्र है, सफेद और नवीन वस्त्र ब्राह्मणका है, मँजीठसे रंगा हुआ वस्त्र क्षत्रियका और रेशमका हलदीसे रंगा हुआ वस्त्र वैश्यका होता है, अथवा तीनोंको ही विना रंगा हुआ सूतका वस्त्र धारण करने योग्य है, ब्राह्मण पहले "भवत्" शब्दका प्रयोग करे, क्षत्रिय बीचमें "भवत्" शब्दका उच्चारण करे और वैश्य अन्तमें "भवत्" शब्दका प्रयोग करे, गर्भसे लगा कर सोलह वर्ष तक ब्राह्मणका और गर्भसे ले कर बाईस वर्ष तक क्षत्रियका और गर्भसे ले कर चौबीस वर्ष तक वैश्यके यज्ञोपवीत करनेकी विधि है. इसके उपरान्त जो यज्ञोपवीत न हो तो वह पतित होता है और उसे गायत्रीका अधिकार नहीं होता, फिर उनका यज्ञोपवीत करना उचित नहीं, और न उन्हें वेद पढावे अथवा यज्ञ कराना भी कर्तव्य नहीं, उनके साथ विवाह न करे, जो मनुष्य गायत्रीसे पतित होता है वह उद्दालक व्रत करे; दो महीने तक जौके आटेका भोजन करे, एक महीने तक सहत खाय, आठ दिन तक घी पिये, छ दिन तक जो विना मांगे मिले उससे निर्वाह करे और तीन दिन तक केवल जल ही पी कर जीवन धारण करे, एक अहोरात्र उपवास करे इसका नाम उद्दालक व्रत है, या किसीके अश्वमेध यज्ञमें अवभृथस्नान करे, अथवा व्रात्यस्तोम यज्ञ करे।

इति वाशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथातः स्नातकव्रतानि स न कंचिद्याचेतान्यत्र राजान्तेवासिभ्यः क्षुधापरीतस्तु किंचिदेव याचेत कृतमकृतं वा क्षेत्रं गामजाविकं सन्तत हिरण्यं धान्यमन्नं वा

१ ब्राह्मण तो इस प्रकार कहे कि "भवति भिक्षां देहि" और क्षत्रिय भवत् शब्दको मध्यमें दे कर "भिक्षां भवति देहि" यह कह कर भिक्षा मांगे और वैश्य भवत् शब्दको अन्तमें कह कर "भिक्षां देहि भवति" इस भांति कहे ।

न तु स्नातकः क्षुधावसीदेदित्युपदेशः न नद्यां स सहसा संविशेन्न रजस्वलायामयोग्यायां नकुलं कुलं स्याद्वत्संतीं विततां नातिक्रामेन्नोद्यंतमादित्यं पश्येन्नादित्यं तपन्तं नास्तं मूत्रपुरीषे कुर्यान्न निष्ठीवेत् परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यादुदङ्मुखश्चाहनि नक्तं दक्षिणामुखः सन्ध्यामासीतोत्तरामुदाहरंति ।

इसके उपरान्त स्नातकव्रत कहते हैं, स्नातक ब्राह्मण और किसीके निकट अन्नकी कभी याचना न करे; केवल राजा वा शिष्योंसे कुछ मांग ले; क्षुधासे युक्त हो तो कुछेक मांग ले किया वा न किया अन्न वा खेत, गौ, बकरी, भेड, सुवर्ण, धान और अन्न इनको मांग ले, यह उपदेश है कि, स्नातक मनुष्य क्षुधासे दुःखी न रहे,नदीमें सहसा प्रवेश न करे और रजस्वला तथा अयोग्य स्त्रीकी संगति न करे, फैली हुई बछडेकी रस्सीको न उलंघे और उदय होते तथा मध्याह्नमें तपते हुए और अस्त होते हुए सूर्यका दर्शन करे, जलमें विष्ठा मूत्रका त्याग न करे और उक्त समयमें मल, मूत्र तथा थूकका त्याग न करे और विष्ठा मूत्र त्यागनेके समयमें मस्तक पर वस्त्र बांध ले, यज्ञके अयोग्य तिनकोंसे पृथ्वीको ढक कर संध्याके समय उत्तरको और रात्रिके समय दक्षिणको मुख करके उसके ऊपर मल, मूत्र त्याग करे।

स्नातकानां तु नित्यं स्यादंतर्वासस्तथोत्तरम् ॥
यज्ञोपवीते द्वे यष्टिः सोदकश्च कमंडलुः ॥
अप्सु पाणौ च काष्ठे च कथितं पावकं शुचिम् ॥
तस्मादुदकपाणिभ्यां परिमृज्यात्कमंडलुम् ॥
पर्यग्निकरणं ह्येतन्मनुराह प्रजापतिः ॥
कृत्वा चावश्यकार्य्याणि आचामेच्छौचवित्तत इति ॥

स्नातकोंके धर्मका यह भी वचन कहते हैं कि स्नातकोंका नित्य अन्तर्वास और उत्तर है, दो यज्ञोपवीत लाठी और कमंडलु होता है,जल, हाथ और काष्ठमें कमंडलुको कहा है, इस

अथाप्युदाहरंति-

यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये कुर्वीत मैथुनम् ॥
भवंति पितरस्तस्य तन्मांसरेतसो भुजः ॥
या स्यादनतिचारेण रतिः साधर्म्यसंश्रिता ॥

अपि च पावकोऽपि ज्ञायते ॥ अद्यश्वो वा विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयंत इति स्त्रीणामिंद्रदत्तो वरः ।

और इसमें यह भी वचन है कि, जो मनुष्य अपनी स्त्रीके मुखमें मैथुन करता है उसके पितर उस एक महीने भर तक वीर्यको भक्षण करते हैं और जो व्यभिचारको छोडकर रतिके धर्ममें स्थित रहता है वही पवित्र जाना जाता है "जो स्त्रियें आजकलमें सन्तान उत्पन्न करनेवाली (आसन्नप्रसूति) हैं वह भी स्वामीके साथ सहवास कर सकती हैं" ऐसा जाना जाता है कि, इन्द्रने स्त्रियोंको यह वरदान दिया है ।

न वृक्षमारोहेन्न कूपमवरोहेन्नाग्निं मुखेनोपधमेन्नाग्निं ब्राह्मणं चान्तरेण व्यपेयान्नाग्निब्राह्मणयोरनुज्ञाप्य वा भार्य्यया सह नाश्नीयादवीर्य्यवदपत्यं भवतीति वाजसनेयके विज्ञायते ॥ नेंद्रधनुर्नाम्ना निर्दिशेन्मणिधनुरिति ब्रूयात् ॥ पालाशमासनं पादुके दंतधावनमिति वर्जयेत् । नोत्संगे भक्षयेदधो न भुंजीत । वैणवं दंडं धारयेद्रुक्मकुंडले च । न बहिर्मालां धारयेदन्यत्र रुक्ममय्याः सभासमवायांश्च वर्जयेत् ॥

वृक्ष पर न चढे,कुए पर न बैठे,मुखसे अग्निको प्रज्वलित न करे, ब्राह्मणके और अग्निके बीचमें हो कर न निकले अथवा आज्ञा ले कर निकले,स्त्रीके साथ भोजन न करे, कारण कि ऐसा करनेसे सन्तान बलहीन होती है, यह वाजसनेयी संहिता ग्रंथमें कहा है, इन्द्रधनुषको नामसे न कहे, परन्तु मणिधनुको नाम ले कर पुकारे, ढाकका आसन, खडाऊं, दतौन इन का निषेध है, गोदीमें रख कर अन्नको न खाय, बांसका दंड और सुवर्णके कुंडल धारण करे और सुवर्णकी मालाके अतिरिक्त प्रत्यक्ष मालाको न पहरे और सभाके समूहका त्याग करे.

अथाप्युदाहरन्ति-

अप्रामाण्यं च वेदानामार्षाणां चैव दर्शनम् ॥
अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मन इति ॥

नानाहूतो यज्ञं गच्छेत् यदि व्रजेदधिवृक्षसूर्यमध्वानं न प्रतिपद्यते । नावं च सांशयिकीं बाहुभ्यां न नदीं तरेदुत्थायापररात्रमधीत्य न पुनः प्रतिसंविशेत् । प्राजापत्ये मुहूर्त्ते ब्राह्मणः स्वनियमाननुतिष्ठेदनुतिष्ठेदिति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इसमें यह भी वचन है कि, वेदोंका प्रमाण न मानना और सम्पूर्ण ऋषियोंके शास्त्रोंमें अव्यवस्था समझनी यही आत्माका नष्ट करना है यज्ञमें विना बुलाये कदापि न जाय अथवा केवल देखनेको चाहिये तो जाय । वृक्षोंके ऊपर तथा सन्मुखसे सूर्यके मार्गका आश्रय न करे, जिस नावमें डूबनेका संदेह हो उसमें कदापि न बैठे और नदीमें न पैरे, पिछली रात्रिके पहरके समय उठ कर और पढ कर फिर शयन न करे, ब्राह्म मुहूर्तमें उठ कर अपने नियमोंको करे ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथातः स्वाध्यायश्चोपाकर्म्म श्रावण्यां पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां वाग्निमुपसमाधाय कृताधानो जुहोति देवेभ्यश्छन्दोभ्यश्चेति । ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य दधि प्राश्य तत उपांशु कुर्वीत । अर्धपंचममासानर्द्धषष्ठानत ऊर्ध्वं शुक्लपक्षेष्वधीयीत । कामं तु वेदांगानि ।

इसके उपरान्त स्वाध्याय और उपाकर्मको वर्णन करते हैं, श्रावणकी पूर्णिमा अथवा भादोंकी पूर्णिमामें उपाकर्म करे, फिर देवता और वेदके उद्देश्यसे अग्निको समीप रख कर

जरीठग्राम्यकुक्कुटशुकसारिकाकोकिलक्रव्यादो ग्रामचारिणश्च ग्रामचारिणश्चेति ॥

श्रीवाशिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

गैंडा, सेह, शशा, कभवा, गोह, यह पांचनखवाले पशु अभक्ष्य नहीं हैं और ऊँटके अतिरिक्त अन्य पशुओंमें जो एक तरफ दांतवाले हैं वह भी अभक्ष्य नहीं हैं और मत्स्योंमें वह नीलगाय, शिशमार, नाका, कुलीर, जिनका आकार बुरा न हो, जिनका सर्पके समान शिर हो, गोरे पक्षी, टीडी और जिनको नहीं कहा है वह अभक्ष्य नहीं हैं वाजसनेयमतमें गौ बैल भी पवित्र हैं, गैंडा और गामका सूकर इनमें विवाद ऋषि गण करते हैं कि कोई तो भक्ष्य है और कोई अभक्ष्य है और पक्षियोंमें विशुवि विष्किर, जालपाद, कलविंक, प्वल, मुरगा, हंस, चकवा, भास, मद्गु, टिट्टिभ, बांध, रात्रिको उडनेवाले, दार्वाघाट जो काष्ठको चोंचसे खोदे, चिडियां, बैला, हारीत, खंजरीट, गांवका मुरगा, तोता, मैना, कोकिला मांसका भक्षक, ग्राममें जो जो विचरण करें यह अभक्ष्य हैं ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदशोऽध्यायः १५.

शोणितशुक्रसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकः तस्य प्रदानविक्रयत्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः। नत्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न स्त्री । दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वान्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ।

मनुष्योंका उपादान कारण शुक्र है, रुधिरनिमित्तसे पिता, माता कारण हैं, इस कारण उसके देनेमें तथा विक्रय करनेमें और त्याग न करनेमें माता पिता समर्थ हैं, एक पुत्रके होने पर उसे दान न करे और उससे प्रतिग्रह भी न करे,कारण कि यह पुत्र पूर्वपुरुषोंकी धाराका रक्षा करनेवाला है, स्वामीकी विना आज्ञाके स्त्रियें दान वा प्रतिग्रह न करें ।

पुत्रं प्रतिग्रहीष्यन् बंधूनाहूय राजनि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतीर्हुत्वा दूरेबांधवमसन्निकृष्टमेव संदेहे चोत्पन्ने दूरेबांधवं शूद्रमिव स्थापयेद् ॥ विज्ञायते ह्येकेन बहु जायत इति ।

जो पुत्रको लेनेकी इच्छा करे तो वह अपने बंधु बांधवोंको बुलाकर राजाके सन्मुख निवेदन कर घरके मध्यमें व्याहृतियोंसे हवन करके जिसके बंधुबांधव दूर हों और जो संदेह आ जाय तथा बंधु दूर हों उसे शूद्रके समान टिकावे और शास्त्रसे यह जाना गया है कि एकसे बहुत होते हैं ।

तस्मिंश्चेत् प्रतिग्रहीते औरसः पुत्र उत्पद्यते चतुर्थभागभागी स्यात् ।

दत्तकपुत्रके लेनेके उपरान्त जो अपने औरससे पुत्र उत्पन्न हो जाय तो यह दत्तकपुत्र प्रतिग्रहीता पिताके धनके चार भागका एक भाग पावे ।

यदि नाभ्युदयिके युक्तः स्याद्वेदविप्लविनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्य पूर्णं पात्रमस्मै निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्य्य केशान्

ज्ञातयाऽन्वारभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापाद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन सह धर्मं मीयुस्तद्धर्माणस्तद्धर्मापन्नाः पतितानां तु चरितव्रतानां प्रत्युद्धारः ।

यदि दत्तक पुत्र आभ्युदयिक कर्ममें युक्त न हो अथवा वेदको भ्रष्ट कर दे तो वामपादसे कुशाओंके अग्रभागको रख कर अथवा रक्त कुशाओंको रख कर इस दत्तक निमित्त पूर्णपात्र दे और इसके घट देनेवालेको मुण्डन करा कर जातिके मनुष्य इस कर्मका प्रारंभ करें और अपसव्य करा कर घरोंमें इच्छानुसार विचरण करने दें, इसके पीछे उसके धर्मको प्राप्त होते हैं, उसके धर्मवाले भी उसके धर्मको प्राप्त होते हैं और पतित यदि व्रतको करले तो उसका भी उद्धार हो जाता है ।

अथाप्युदाहरंति-

अग्न्यभ्युद्धरतां गच्छेत्क्रीडंति च हसंति च ॥

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

शूद्रेण ब्राह्मण्यामुत्पन्नश्चांडालो भवतीत्याहुः। राजन्यायां वैश्यायामन्त्यावसायी वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रोमको भवतीत्याहुः। राजन्यायां पुल्कसः। राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः सूतो भवतीत्याहुः ॥

शूद्रसे जो ब्राह्मणीमें उत्पन्न हो वह चांडाल होता है, ऐसा कहा गया है, क्षत्रिया और वैश्यामें जो औरससे उत्पन्न हुआ पुत्र अंत्यावसायी होता है और ब्राह्मणीमें जो वैश्यसे पुत्र उत्पन्न हुआ है वह रोमक कहाता है और क्षत्रिया स्त्रीमें जो वैश्यके औरससे पुत्र उत्पन्न हुआ है उसे पुल्कस पुत्र कहते हैं और क्षत्रियके औरससे जो ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुआ है वह पुत्र सूत कहाता है।

अथाप्युदाहरन्ति-

"छिन्नोत्पन्नास्तु ये केचित्प्रातिलोम्यगुणाश्रिताः॥गुणाचारपरिभ्रंशात्कर्मभिस्तान्विजानीयुरिति। एकांतरद्व्यंतरत्र्यंतरानुजाता ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैरवच्छिन्ना अंबष्ठा निषादा भवंति। शूद्रायां पारशवः पारयन्नेव जीवन्नेव शवो भवतीत्याहुः शव इति मृताख्या एतच्छावं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे तु नाध्येतव्यम् ॥

इसमें यह भी वचन कहे गये हैं कि इस भांति गुप्तभावसे उत्पन्न हो कर नीचजाति भी समान गुणवाली हो जाती है, इस कारण गुणहीन, भ्रष्टाचार और हीनकर्मोंसे इनकी पहचान करे, एक, दो वा तीन वर्णके व्यवधानसे जो ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्योंसे उत्पन्न हो वह क्रमानुसार अष्ट निषाद और भील होते हैं और शूद्रोंमें उत्पन्न हुआ पारशव होता है, वह जीता हुआ ही शव होता है, यह शास्त्रमें विदित है, शव यह मृतकका नाम है और कोई२ ऐसा भी कहते हैं कि शूद्र ही श्मशान है, इस कारण शूद्रके समीप कदापि न पढे।

अथापि यमगीताञ्छ्लोकानुदाहरंति-

श्मशानमेतत्प्रत्यक्षं ये शूद्राः पापचारिणः ॥
तस्माच्छूद्रसमीपे च नाध्येतव्यं कदाचन ॥
न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥
न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥

यहां पर यम ऋषिके कहे हुए श्लोकोंको कहते हैं कि पाप करनेवाले शूद्रही प्रत्यक्ष श्मशानके समान हैं, इसी कारणसे शूद्रके निकट पढनेका निषेध है और शूद्रको ज्ञान, उच्छिष्ट तथा साकल्य न दे और धर्मोपदेश तथा व्रतका उपदेश भी शूद्रको देना उचित नहीं।

यश्चास्योपदिशेद्धर्मं यश्चास्य व्रतमादिशेत् ॥
सोऽसंवृत्तं तमो घोरं सह तेन प्रपद्यते इति।

जो मनुष्य शूद्रको धर्म और व्रतका उपदेश करता है वह पुरुष शूद्रके साथ घोर नरकमें जाता है।

व्रणद्वारे कृमिर्यस्य संभवेत कदाचन ॥
प्राजापत्येन शुद्ध्येत हिरण्यं गौर्वासो दक्षिणेति।

जिस पुरुषके घावमें कदाचित् कीडे हो जायँ तो प्राजापत्य व्रत कर सुवर्ण, गौ और वस्त्र इनकी दक्षिणा देनेसे शुद्ध होता है।

नाग्निचित्परामपेयात् कृष्णवर्णायाः स्त्रमाया इव न धर्माय न धर्मायेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अग्निहोत्री मनुष्य अन्यस्त्रीका संग न करे, कारण कि काले वर्ण (शूद्र) की स्त्री भोगके लिये ही है, धर्मके लिये नहीं है।

इति श्रीवासिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

करनेसे जो उनसे धन आदि मिले उसे त्याग दे, और उनके साथ फिर निवास न करे, फिर वह उत्तर दिशामें जाय भोजनको त्याग कर संहिताको पढता रहे तब वह शुद्ध होता है, यह शास्त्रसे जाना गया है।

अथाप्युदाहरन्ति ॥
शरीरपातनाच्चैव तपसाध्ययनेन च ॥
मुच्यते पापकृत्पापाद्दानाच्चापि प्रमुच्यते ॥
इति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इसमें यह वचन भी कहा है, कि शरीरके गिराने, तपस्या करने और पढनेसे पाप करनेवाला मुक्त हो जाता है और दान देनेसे भी पापसे छूट जाता है यह शास्त्रसे विदित हुआ है।

इति वशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्वीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां खरमारोप्य महापथमनुव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते ॥ वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेल्लोहितदर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गोरथमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते । राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रैर्वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरोवापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां रक्तखरमारोप्य महापथमनुव्राजयेत् ॥ एवं वैश्यो राजन्यायां शूद्रश्च राजन्यावैश्ययोः ।

शूद्र यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करे तो शूद्रको तृणोंमें लपेट कर अग्निमें डाल दे और ब्राह्मणीका शिर मुडा कर उसके सारे शरीरमें घृत मल कर नंगी कर गधेकी पीठ पर चढा कर सडकके बीचमें घुमावे ऐसा करनेसे वह ब्राह्मणी पवित्र होती है; यह शास्त्रसे

जाना गया है, वैश्य यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करे तो वैश्यको लाल कुशाओंसे लपेट कर अग्निमें डाल दे और ब्राह्मणीका मस्तक मुडा कर उसके सारे शरीरमें घी मल कर नंगी कर बैलोंके रथमें बैठा कर महामार्गमें निकाल दे तब वह पवित्र होती है; यह शास्त्रसे विदित हुआ है यदि क्षत्रिय ब्राह्मणीके साथ गमन करे तो शरोंके पत्तोंमें लपेट कर क्षत्रीको अग्निमें डाल दे और ब्राह्मणीका शिर मुडा कर उसके समस्त शरीरमें घृत मल नंगी कर गधे पर चढा कर महा मार्गको निकाल दे इसी भांति वैश्य क्षत्रियाके साथ गमन करे, और शूद्र क्षत्रिया वा वैश्यामें गमन करे तो पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करनेसे उनकी शुद्धि होती है।

मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरं भुंजानाधःशयाना त्रिरात्रमप्सु निमग्नायाः सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्वा जुहुयात्पूता भवतीति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

समाप्तेयं वासिष्ठस्मृतिः ।

जो स्त्री मनसे पतिका अवलंघन कर दे वह तीन रात्रि तक जौ और दूधको खाकर पृथ्वी पर शयन करे, जलमें तीन रात्रि स्नान करे और आठसौ गायत्री वा शिरोमन्त्रोंसे हवन करे तब वह पवित्र होती है, ऐसा शास्त्रसे जाना गया है।

इति वाशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

دسواں باب
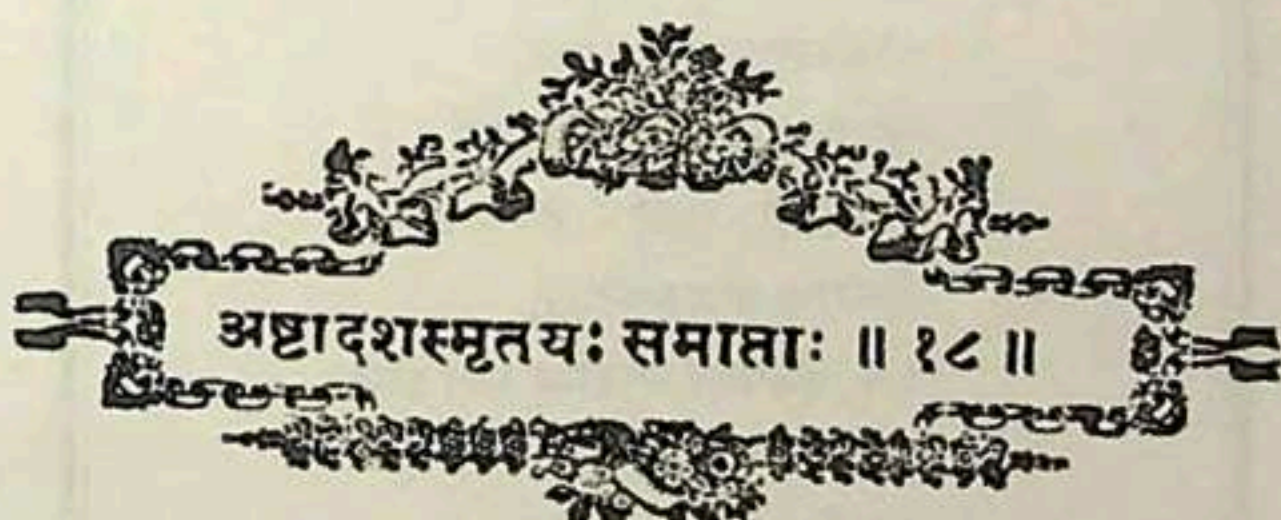
1- دو جنمے برہمن، کھشتری اور ویش اپنے (تفویض شدہ) فرائض ادا کریں اور ویدوں کا مطالعہ کریں؛ لیکن ویدوں کی تعلیم (فقط) برہمن دیں گے، یہی طے شدہ قانون ہے۔

2- برہمنوں کو (تمام) انسانوں کے لیے مختص ذرائع روزگار پیشوں کا علم ہونا چاہیے اور وہ سب کو ان سے آگاہ کرے؛ خود بھی (قانون کے مطابق) زندگی بسر کرے۔

3- اپنی فضیلت، اپنے اصل کی برتری، مخصوص قواعد کی پابندی اور ودیعت شدہ تقدیس کے باعث برہمن (تمام) ذاتوں کو آقا و مالک ہے۔

4- (دو جنمہ) برہمن، کھشتری اور ویش دو بیج ذاتیں ہیں جبکہ چوتھی ذات یعنی (ایک جنما) شودر کا صرف ایک جنم ہے، پانچویں کوئی (ذات) نہیں ہے۔

5- تمام (ذاتوں) میں اسی اولاد کو ذات کا اصیل (یعنی اس ذات کا) خیال کیا جائے گا جو براہ راست (برابر ذات کی) بیاہ میں آنے والی کنیا سے پیدا ہو۔ یعنی اگر ایک ذات کے مرد کی شادی ہم ذات کنواری عورت سے ہو تو بچے کو اس ذات کا خیال کیا جائے گا۔

6- برہمن، کھشتری اور ویش کے ہاں جو بیٹے اپنی سے (اگلی) نچلی ذات کی بیوی سے پیدا ہوں گے، انہیں باپ سے مشابہہ (قرار دیا گیا ہے لیکن) ماؤں میں (توارثی) خامی کے باعث یہ اولاد خامی اور عیب سے مبراء نہ ہوگی۔

7- (خاوندوں سے) ایک درجہ نچلی ذات کی بیوی سے پیدا ہونے والے بیٹوں کے متعلق یہ قانون ابدی ہے؛ معلوم ہو (کہ) خاوند سے دو یا تین درجے نچلی ذات سے پیدا ہونے والے بیٹوں پر بھی اس قانون کا اطلاق ہوتا ہے۔

8- برہمن اور ویش کی بیٹی سے جنم لینے والا (لڑکا) امبشت کہلاتا ہے۔ جبکہ برہمن کی شادی شودر کی لڑکی سے ہو تو پیدا ہونے والا لڑکا نشاد کہلاتا ہے۔ اسے پارشو بھی کہتے ہیں۔

9- کھشتری اور شودر کی بیٹی سے پیدا ہونے والا لڑکا اگر کہلاتا ہے جو اپنے باپ کی طرح تند مزاج اور ظلم میں لذت کوش ہوتا ہے۔

10- (تین) نیچ ذات عورتوں سے برہمن کے بچے، (دوم نیچ ذات عورتوں سے کھشتری کے بچے اور نیچ ذات عورت سے ویش کے بچوں کو رزیل الاصل (اسپد) کہا جاتا ہے۔

11- برہمن کی بیٹی سے (جنم لینے والا) کھشتری کا بیٹا ذات کا سوت کہلاتا ہے۔ شاہی خاندان یا برہمن کی بیٹی سے پیدا ہونے والا ماگدہ اور بیدیہ کہلاتا ہے۔

ब्राह्मणो वृक्षमारूढश्चांडालो मूलसस्पृशः ।
फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्त कथ भवेत् ॥१७६॥

जो ब्राह्मण वृक्ष के ऊपर चढ़ा हो और चांडाल उस वृक्ष के मूल को (जड़) छू रहा हो और ब्राह्मण उस वृक्ष के फल को खा रहा हो तो ऐसी अवस्था में प्रायश्चित कैसे हो ?

ब्राह्मणान् समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ।
नक्तभोजी भवेद्विप्रो घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥१७७॥

ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर वस्त्रों सहित स्नान करके और दिन में उपवास करके रात्रि को भोजन करके और घृत को खाकर ब्राह्मण शुद्ध होता है ।

एकवृक्षसमारूढश्चांडालो ब्राह्मणस्तथा ।
फलान्यत्ति स्थितं तत्र प्रायश्चित्त कथ भवेत् ॥१७८॥

यदि चांडाल तथा ब्राह्मण एक वृक्ष पर चढ़े हुए वृक्ष के फलों को खा रहे हों तो वहा प्रायश्चित कैसे हो ?

ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासः स्नानमाचरेत् ।
अह्नोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥१७९॥

ब्राह्मणों की आज्ञा से सचैलस्नान करके, और एक रात्रि तथा दिन उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है ।

एकशाखासमारूढश्चांडालो ब्राह्मणो यदा ।
फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्त कथ भवेत् ॥१८०॥

यदि एक ही शाखा पर चढ़े हुए ब्राह्मण और चांडाल फलों को खा रहे हों तो ऐसे स्थल में प्रायश्चित कैसे हो ?

त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ।
स्त्रिया म्लेच्छस्य संपर्कात् शुद्धिः सातपने तथा ॥१८१॥
तप्तकृच्छ्र पुनः कृत्वा शुद्धिरेषाऽभिधीयते ।

वह तीन रात्रि तक उपवास करके पंचगव्य पीने से शुद्ध होता है और म्लेच्छ की स्त्री के साथ सग करने पर सांतपन कृच्छ्र करने से उसकी शुद्धि होती है । फिर तप्त कृच्छ्र करे यह शुद्धि शास्त्र में कही गयी है ।

कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चांत्यजाः स्मृताः ।
एषां गत्वा स्त्रियो मोहाद् भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।।१९८।।
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्देवद्वयम् ।

धोबी, चमार, नट, बुरट (जो बांस की डलियां बनाते हैं), धीमर, मद, कलाल, भील, ये सात अंत्यज कहे गये हैं । इन जातियोंकी स्त्रियों को भोग कर और इन जातियों में भोजन करके और इन से प्रतिग्रह (दान) को लेकर यदि जान बूझकर पूर्वोक्त तीनों कर्म किये गये हों तो एक वर्ष तक कृच्छ्र और अज्ञान से दो वर्ष तक कृच्छ्र करे ।

सकृद्भुक्त्वा तु या नारी म्लेच्छैर्या पापकर्मभिः।।१९९।।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत् ऋतुप्रस्रवणेन तु ।

जो स्त्री म्लेच्छ पापकर्मियों से एक बार भोगी हो, व्रत से और ऋतु (मासिक धर्म) के होने से शुद्ध होती है ।

बलाद्धृता स्वयं वाऽपि परप्रेरितया यदि ।।२००।।
सकृद्भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्ध्यति ।

वह स्त्री प्राजापत्य बल से पकड़ी गई अथवा स्वयं गई हो अथवा किसी के कहने से गई हो और एक बार ही भोगी हो तो(वह स्त्री) प्राजापत्य व्रत करने से शुद्ध होती है ।

प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् ।।२०१।।
न तेन तद्व्रतं तासां विनश्यति कदाचन ।

जिन स्त्रियों ने बहुत दिनों के तप (व्रत)का प्रारंभ किया हो और उनको यदि मासिक धर्म हो जाय तो उससे उन स्त्रियों का वह व्रत कदाचित् भी नष्ट नहीं होगा ।

मद्यसस्पृष्टकुंभेषु यत्तोय पिबति द्विजः ।।२०२।।
कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत् पुनः सस्कारमर्हति ।

मदिरा का स्पर्श जिसमें हुआ हो ऐसे घड़े के जल को यदि द्विज पीले तो चौथाई कृच्छ्र करने से शुद्ध होता है और फिर संस्कार के योग्य होता है ।

अन्त्यजस्य तु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ।।२०३।।
उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च ।

अंत्यजों के जो वृक्ष हों और उन पर बहुत फल पुष्प आते हों, तो उन वृक्षों के पुष्प और फलों के भोगने का दोष नहीं है ।

चांडालेन तु संस्पृष्टं यत्तोयं पिबति द्विजः ।।२०४।।
कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत आपस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ।

स्थित भी, ये निकोलन से शुद्ध हो जाते है ।

अज्ञानात् पिबते तोयं ब्राह्मण शूद्रजातिषु ।
अहोरात्रोषित: स्नात्वा पचगव्येन शुद्ध्यति ॥२५१॥

जो ब्राह्मण शूद्र जातियों का जल अज्ञान से पीले तो दिन रात्र का उपवास और पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है ।

आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकवान् भवेत् ।
अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादग्निं विनिर्दिशेत् ॥२५२॥
योऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते ।
अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स: स्मृत: ॥२५३।

जो अग्निहोत्री ब्राह्मण महापातकी हो जाय तो जल में होम के पात्रों को फेंक कर फिर अग्निहोत्र को ग्रहण करे । जो विवाह की अग्नि को ग्रहण करके अर्थात् अग्निहोत्र को लेकर अपने को गृहस्थ मानता है अर्थात् उस अग्नि की रक्षा नहीं करता इससे उसका अन्न नहीं खाना चाहिए अत: ऋषियों ने उसे वृथापाक कहा है ।

वृथापाकस्य भु जान: प्रायश्चित्त चरेद्द्विज: ।
प्राणानप्सु त्रिराचम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥२५४॥

वृथापाक के अन्न जो द्विज खाले वह इस प्रायश्चित को करे वह जल के मध्य में तीन बार प्राणायाम करके और घृत को खा कर शुद्ध होता है।

वैदिके लौकिके वाऽपि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ।
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥२५५॥

वेद के मंत्रों से निकाली अथवा लोक की, जिसमें होम किया गया हो ऐसी अग्नि में अथवा जल में अथवा भूमि पर बलि वैश्वदेव को पांच हत्याओं को दूर करने के निमित्त करे ।

कनीयान् गुणवान् श्रेष्ठ श्रेष्ठश्चेन्निर्गुणो भवेत् ।
पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्निं धारयेद् बुध. ॥२५६॥

यदि ज्यष्ठ भाई निर्गुणी हो और छोटा गुणी हो तो ज्ञानी छोटा भाई जेठे से पहिले विवाह करके गृह्य अग्नि को धारण करे।

ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्णीयादग्नि(यवीयक:)मग्रत: ।
नित्यं नित्य भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशय. ॥२५७॥

यदि ज्येष्ठ भाई निर्दोष हो और छोटा भाई अग्निहोत्र को ग्रहण कर ले तो प्रतिदिन उसे ब्रह्महत्या लगती है इसमें संशय नहीं है ।

अवीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम् ।
शस्त्रविक्रयकर्मारतन्तुवायाश्ववजीविनाम् ॥ ६३ ॥
नृसंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् ।
चैलधावसुराजीविसहोपपतिवेश्मनाम् ॥ ६४ ॥

स्वतंत्र स्त्री, सोनार, स्त्रीवश, ग्रामयाजी, शास्त्रबेंचनेवाला, लोहार, खाती, तन्तुवाय (जोलाहा या दर्जी) और जिसकी जीविका कुत्तों के द्वारा हो ॥ ६३ ॥ निर्दय, राजा, रजक (रंगरेज) कृतघ्न (उपकार न माननेवाला) व्याध, धोबी, सुरा वेचनेवाला, जार, लम्पट पुरुष का पड़ोसी ॥ ६४ ॥

पिशुनानृतिनांश्चैव तथा चाक्रिकवन्दिनाम् ।
एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा ॥ ६५ ॥
शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ।
भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ ६६ ॥

पिशुन (परदोष सूचक) अनृती (मिथ्यावादी) तेली, गाड़ी चलानेवाला, वन्दीजन और सोमलता वेचनेवाला जो हो इन सवोंका अन्न भी कभी न खाना ॥ ६५ ॥ शूद्रों में दास, गोपाल अहीर, कुलमित्र (जिसकी मिताई बाप दादे से चली आती हो) अर्द्धसीरी (साझे में खेती करनेवाला) नापित और जो शरणागत इन सवोंका अन्न खाना ॥ ६६ ॥

स्नातक प्रकरण समाप्त ॥

भक्ष्याभक्ष्यप्रकरण ।

अनर्चितं वृथामांसं केशकीटसमन्वितम् ।
शुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम् ॥ ६७ ॥

उदक्यास्पृष्टसंघुष्टं पर्य्यायान्नं च वर्जयेत् ।
गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पदास्पृष्टं च कामतः ॥ ६८ ॥

अनादर से दिया हुआ अन्न, वृथामांस (अपने लिये पकाया हुआ मांस) जिस अन्न में केश व कीट पड़े हों, जो अम्ल हो गया हो, वासी, जूठा, कुत्ता से छूगया, पतित से देखा हुआ ॥ ६७ ॥

करके बाँट लें, यह शास्त्र की मर्यादा है ॥ २८ ॥

अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः ।
उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मतः ॥ २९ ॥
यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ ३० ॥

जिसके पुत्र न हो, उसने जो अपने बड़ों की आज्ञा से दूसरे के क्षेत्र (स्त्री) में पुत्र उत्पन्न किया हो, तो वह पुत्र दोनों बीजी और क्षेत्री का पिण्ड देनेवाला और धन लेनेवाला भी धर्मपूर्वक होता है ॥ २९ ॥ जिस कन्या का वाग्दान होने पर वर मर जावे, तो उस कन्या को देवर (पति का भाई बड़ा वा छोटा) व्याहे ॥ ३० ॥

यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् ।
मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥ ३१ ॥
औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः ।
क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु स गोत्रेणेतरेण वा ॥ ३२ ॥

और यथाविधि (अपने अंग में घी लगाकर मौन होकर) जब तक कोई सन्तति न उत्पन्न हो तब तक हर एक ऋतुकाल में उस स्त्री को श्वेत वस्त्र पहिना कर और मन, वाणी और शरीर का संयम कराकर एक ही बार गमन करे ॥ ३१ ॥ जो अपनी धर्मपत्नी में (विवाहिता स्त्री में) पुत्र उत्पन्न हो, वह औरस कहाता है । पुत्रिका सुत (बेटी का बेटा वा बेटी) भी उसी के (औरस के) बराबर है । अपनी स्त्री में जो सगोत्र से वा दूसरे

से भी उत्पन्न हो वह पुत्र क्षेत्रज कहलाता है ॥ ३२ ॥

गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः ।
कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥ ३३ ॥
अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः ।
दद्यान्माता पिता वायं सपुत्रो दत्तको भवेत् ॥ ३४ ॥

गृह में जो गुप चुप पुत्र जन्मे वह गूढज है । जो कन्या (वे व्याही स्त्री) से उत्पन्न हो, वह कानीन कहलाता है । और नाना का पुत्र होता है ॥ ३३ ॥ जो क्षतयोनि वा अक्षतयोनि पुनर्भू में उत्पन्न होता है, वह पौनर्भव कहलाता है । जिस पुत्र को माता व पिता दे देवें वह दत्तक होता है ॥ ३४ ॥

क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयं कृतः ।

जो किसी की कन्या सच्चा भी दोष प्रकाश करे, तो उसमें सौ पण दण्ड लेना और झूठ मूठ दोष लगावे, तो दोसौ पण दण्ड लेना, पशु में गमन करे उससे सौ पण दंड लेना और नीच स्त्री तथा गौ में गमन करे, तो मध्यम साहस दंड करना ॥ ९३ ॥ जो पुरुष पराये की अवरुद्धा (जिसको घर से बाहर निकलना मना है) और भुजिष्या (जिसे किसी को सौंप दिया हो) दासियों में गमन करे, तो उससे पचास पण दंड लेवे यद्यपि वे गमन के योग्य हैं, परन्तु दूसरे की हैं ॥ ९४ ॥

प्रसह्य दास्यभिगमे दण्डो दशपणः स्मृतः ।
बहूनां यद्यकामासौ चतुर्विंशतिकः पृथक् ॥ ९५ ॥
गृहीतवेतनां वेश्यां नेच्छन्तीं द्विगुणं वहेत् ।
अगृहीते समं दाप्यः पुमानप्येवमेव च ॥ ९६ ॥

इनके सिवा और दासियों में यदि बलात्कार से गमन करे, तो दश पण दंड दे और जो कई पुरुष एक ही के पास उसकी इच्छा के विना ही गमन करें तो, उन सबको चौबीस २ पण दंड करे ॥९५॥ जो वेश्या दाम लेके भोग की इच्छा न करे, और शरीर से रोगी न हो तो दूना दंड दे । विना माल लिये ही स्वीकार किये हो और फिर न चाहे तो बराबर दंड दे । यही दंड पुरुष के लिये भी जानना चाहिए ॥ ९६ ॥

अयोनौ गच्छतो योषां पुरुषं वापि मेहतः ।
चतुर्विंशतिको दण्डस्तथा प्रव्रजितागमे ॥ ९७ ॥
अन्त्याभिगमने त्वंक्यः कबन्धेन प्रवासयेत् ।
शूद्रस्तथान्त्य एव स्यादन्तस्यार्यागमे वधः ॥ ९८ ॥

जो स्त्री की योनि छोड़ दूसरे अंग में गमन करे अन्य पुरुष के सामने रति आदि करे, और संन्यासिनी वा अवधूतिनी के पास जावे तो चौबीस पण दंड देवे ॥ ९७ ॥ चाण्डाल की स्त्री से गमन करे, तो उसके माथे में भग का आकार दागकर, अपने राज्य से निकाल दे और जो शूद्र हो, तो वह चाण्डाल ही हो जाता है । यदि चाण्डाल उत्तम जाति की स्त्री से गमन करे, तो उसे मरवा डालना चाहिए ॥ ९८ ॥

इति स्त्रीसंग्रहप्रकरण समाप्त ।

जाते हैं, इनको मारे तो घी भोजन करे और हड्डीवाले जीव को मारे तो थोड़ा-सा दान दे । विना हड्डी का हो तो एक प्राणायाम करने से शुद्ध होता है ॥ ७५ ॥ यदि कोई प्रयोजन (आम्र आदि) वृक्ष, गुल्म, लता और वीरुध (ये सब व्यवहाराध्याय में कह आये हैं) इन सबोंको काटे तो सौ वार कोई गायत्री आदि ऋचा जपने से शुद्ध होता है । और ओषधियों को व्यर्थ काटे तो दिन भर दूध पीकर रहे और गौ की सेवा करे, इतना विशेष है ॥ ७६ ॥

पुंश्चली वानरखरैर्दष्टश्चोष्ट्रादिवायसैः ।
प्राणायामं जले कृत्वा घृतंप्राश्य विशुद्ध्यति ॥७७॥
यन्मेद्यरेत इत्याभ्यां स्कन्नं रेतोभिमन्त्रयेत् ।
स्तनान्तरं भ्रुवोर्मध्ये तेनानामिकया स्पृशेत् ॥७८॥

व्यभिचारिणी स्त्री, वानर, गदहा, ऊँट और कौआ आदि दाँत से काट लेवें तो जल में खड़ा होकर प्राणायाम करे और उस दिन घी खा के रहे तो शुद्ध होता है ॥ ७७ ॥ जिसका वीर्य स्वप्न आदि में अपने आप गिर पड़े तो वह (यन्मेऽद्यरेतः) इत्यादि दोनों मंत्रों से उसका अभिमन्त्रण करे और उसकी छाती के मध्य और भौंह के बीच अनामिका अँगुली से छुआवे ॥ ७८ ॥

मयि तेज इतिच्छायां स्वांदृष्ट्वाम्बगतां जपेत् ।
सावित्रीमशुचौ दृष्टे चापल्ये चानृतेपि च ॥ ७९ ॥
अवकीर्णी भवेद्गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम् ।
गर्दभं पशुमालभ्य नैर्ऋतं स विशुद्ध्यति ॥ ८० ॥

अपनी परछाहीं पीछे आती देखें तो (मयितेजः) इस मंत्र को जपे और किसी अपवित्र मनुष्य को देखे वा चंचलता करे अथवा झूठ बोले तो गायत्री का जप करे ॥ ७९ ॥ यदि कोई ब्रह्मचारी स्त्री के पास जाय तो वह अवकीर्णी कहलाता है । और गदहा को मार के उसके मांस से निर्ऋति देवता का यज्ञ करे तो शुद्ध होता है ॥ ८० ॥

महापापोपपापाभ्यां योभिशंसेन्मृषापरम् ।
अब्भक्षो मासमासीत स जापी नियतेन्द्रियः ॥८६॥

जो किसी को मिथ्या ही दोष लगावे तो उसको दूना दोष लगता है । और सत्य भी किसी का दोष हो उसको वे पूछे आपसे-आप कहता फिरे तो उतना ही दोष उसको लगता है जो झूठमूठ दोष लगाता है, वह केवल दूना दोष ही नहीं पाता, किन्तु जिसको दोष लगाता है, उसने जो पाप किये हों, सब उसको लगते हैं ॥ ८५ ॥ महापातक और उपपातक का दोष जो झूठमूठ दूसरे को लगावे, वह इन्द्रियों का संयम करके महीने भर तक जप करता रहे और केवल जल पीके रहे, अन्न न खावे ॥ ८६ ॥

अभिशस्तो मृषाकृच्छ्रञ्चरेदाग्नेय मेव च ।
निर्वपेत्तु पुरोडाशं वायव्यं पशुमेव वा ॥ ८७ ॥
अनियुक्तो भ्रातृजायां गच्छंश्चान्द्रायणं चरेत् ।
त्रिरात्रान्ते घृतं प्राश्य गतोदक्या विशुद्ध्यति॥८८॥

जिसको झूठमूठ दोष लगाया गया हो, वह कृच्छ्र प्राजापत्य करे वा अग्निदेव का पुरोडाश (हविष्य) बनाकर यज्ञ करे अथवा वायु देवता के पशु से यज्ञ करे ॥ ८७ ॥ बड़े लोगों की

आज्ञा के बिना ही जो भाई की स्त्री में गमन करता है, वह चान्द्रायण व्रत करे और रजस्वला स्त्री में गमन करे तो तीन दिन उपवास कर घी खावे तो शुद्ध होता है ॥ ८८ ॥

त्रीन् कृच्छ्रानाचरेद्व्रात्ययाजकोभिचरन्नपि ।
वेदप्लावीयवान्यब्दं त्यक्त्वा च शरणागतम् ॥८९॥
गोष्ठे वसन् ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रतः ।
गायत्रीजाप्यनिरतः शुद्ध्यते सत्प्रतिग्रहात्॥ ९० ॥

जो व्रात्य (पतित सावित्री) को यज्ञ करावे वह तीन कृच्छ्रव्रत करे और किसी का अभिचार (कष्ट देने वा मारने का उद्योग) करे तो भी तीन कृच्छ्र करे । जो अनध्याय में वा शूद्र के सामने वेद पढ़े वह और जो अपनी शरण आये को निकाल दे वह भी एक वर्ष भर यव का भात खाकर व्रत किया करे, तो शुद्ध होता है ॥ ८९ ॥ यदि किसी निषिद्ध मनुष्य का दान ग्रहण करे तो ब्रह्मचर्य धारण करके महीना भर दूध पीता और गायत्री जपता हुआ गोशाला में वास करे तो शुद्ध होता है ॥९०॥

इत्युपपातकप्रायश्चित्तप्रकरण ।

हाथ गाँव से बाहर निकाल देवें उस पतित को फिर हर एक प्रकार से व्यवहार से अलग रक्खें ॥ ९५ ॥ यदि घड़ा निकालने पर कुछ सूझे और प्रायश्चित्त करके फिर अपने जाति भाइयों के निकट आवे तो वे लोग इकट्ठे होकर उसके साथ नये घड़े में पानी मँगा के पीवें और उसकी निन्दा भी कभी न करें और सब व्यवहार में उसका संग्रह रक्खें ॥ ९६ ॥

पतितानामेष एव विधिः स्त्रीणां प्रकीर्तितः।
वासो गृहान्तिकं देयमन्नं वासः सरक्षणम् ॥ ९७ ॥
नीचाभिगमनं गर्भपातनं भर्तृहिंसनम्।
विशेषपतनीयानि स्त्रीणामेतान्यपि ध्रुवम् ॥ ९८ ॥

यही विधि पतित स्त्रियों की भी है। केवल इतना विशेष है कि अपने घर के निकट कोई झोपड़ी उनके रहने को लगा देनी और अन्न वस्त्र साधारण रीति से दिया करना और इस बात की रक्षा भी रक्खे कि वह अभिचार आदि न करने पावें ॥९७॥ नीच जाति के पुरुष के पास जाना, गर्भ गिराना और अपने पति का वध करना इन सब कामों से विशेष करके स्त्री पतित होती है और महापातक आदि से भी पतित होती है ॥ ९८ ॥

शरणागतबालस्त्रीहिंसकान्संविशेन्न तु।
चीर्णव्रतानपि सतः कृतघ्नसहितानिमान् ॥ ९९ ॥
घटेऽपवर्जिते ज्ञातिमध्यस्थो यवसं गवाम्।
प्रदद्यात्प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य हि सत्क्रिया ॥३००॥

शरणागत बालक और स्त्री को मारनेवाला जो प्रायश्चित्त कर भी डाले तो भी उसके साथ खानपान का व्यवहार न

करना। यही रीति कृतघ्नी की भी समझना चाहिये ॥ ९९ ॥ जिसका घड़ा निकाला गया हो वह फिर प्रायश्चित्त करके जाति में मिलने आया हो तो पहले सब जाति बन्धुओं के बीच अपने हाथ से गौ को यवस (कोमल घास) खिलावे तो जाति के लोग भी उसका सत्कार करें नहीं तो नहीं ॥ ३०० ॥

विख्यातदोषः कुर्वीत पर्षदोऽनुमतं व्रतम्।

शूद्रको विद्याका अधिकार नहीं ॥ ३५ ॥

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥ ३६ ॥

इस सूत्रके--संस्कारपरामर्शात् १ तदभावाभिलापात् २ च ३ यह तीन पद हैं ॥ शास्त्रके विषै विद्या ग्रहणका अङ्ग उपनयनादि-संस्कार कहाहै और शूद्रको उपनयनादि संस्कारका अभाव कहाहै इसीसे शूद्रको विद्याका अधिकार नहीं ॥ ३६ ॥

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥ ३७ ॥

इस सूत्रके—तदभावनिर्धारणे १ च२प्रवृत्तेः ३ यह तीन पद हैं ॥ श्रवण होता है कि सत्यकामका पिता मरगया जब अपनी माता जा-बाला को पूछा कि मेरा गोत्र क्या है तब जाबाला बोली कि मैं तेरे पिताकी सेवामें व्यग्रचित्त रही इसीसे तेरे पिताका गोत्र नहींजानती इतना जानतीहों कि जाबाला मेरा नाम है औ सत्यकाम तेरा नामहै ति-सके अनन्तर सत्यकाम गौतमऋषिके समीप जाताभया जब गौतम बोला कि तेरा गोत्र क्याहै? तब सत्यकामबोला कि मैं मेरा गोत्र नहीं जानता औ मेरी माताभी नहीं जानती है परंतु मेरी माता बोली कि

तुम उपनयन संस्कारके वास्ते आचार्यके समीप जाओ औ ऐसे कहो कि सत्यकाम मेरा नाम है औ जाबालाका पुत्रहों इति । तब गौतम बोला कि हे सौम्य तेरे सत्यवचन करके निर्धार होताहै कि तूं शूद्र नहीं है तूं समिध लेआ तेरा उपनयन करेंगे इस गौतमकी प्रवृत्तिसे जाना जाताहै कि शूद्रको विद्याका अधिकार नहींहै॥३७॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३८ ॥

इस सूत्रके—श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्१स्मृतेः २ च३यह तीन पदहैं ॥ "अथास्यवेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यांश्रोत्रप्रतिपूरणम्"इति । "न शूद्राय मतिं दद्यात्" इति च॥इन स्मृतियों करके शूद्रको वेदश्रवणका औ वेदके अध्ययनका औ वेदार्थके अनुष्ठानका निषेध होनेतें शूद्रको वेदविद्याका अधिकार नहीं । औ स्मृतिका अर्थ यह है कि जब ब्राह्मण वेदका पाठ करे तब शूद्र प्रमादसे वेदको सुने तो सीसे को वा लाखको तपायके तिसके श्रोत्रको पूरण करे इति औ शूद्रको वेदका ज्ञान नहीं देना इति च ॥ ३८ ॥

जिस करके यह सर्व जगत् चेष्टा करता है सो प्राण है वा चिदात्मा है? अत आह ॥

اور سودر نے کہا کہ یہہ جابل (بدیا ہین - ناخواندہ) ہی اسلئے مجہہ پیچ کا اثر ہوگا - بہتر ہوگا کہ یہہ بار دیکھا سی

جاکر بدیا پڑہی فقط یہہ بات چیت باہمی ہنسون کی سنکر راجا اپنی بڑی حقارت سمجہکر صبح ہوتے ہی رینک رشی کے پاس جا - اور چہہ سو گواو

اپنے تہہ بہٹ کرکی برابدیس کرانیکی التجا کی رشی نے کہا کہ تم بدیا ہین ہو یعنی سودر ہو لہذا میں تمہیں سودر کا دان ہم نہین سکتے اور علم

مین پڑہا سکتے ہین چنانچہ راجا واپس آیا اور بہت سی رشی کی باتون کے نتیجہ کو سمجہکر راجا کو بڑا شوک ہوا (ایسا اور اتہاس ہی آگے کہینگے مین

پینتیسوان سوتر

क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेनलिङ्गात् ॥ ३५ ॥ सूत्र

ارتھ (سمبرگ بدیا) संवर्गविद्या پاک شٹیش مین سنا جاتا ہے کہ (چیتررتھ) نامی راجا کی نسل مین अभिप्रतारि

(ابھپتارہ) نام ایک راجا تھا مگر بدیا ہین ہونے سے اوسکی مثال بھی اوس جان سرتی نامی راجا مندرجہ سوتر نمبر ۳۴ کی

طرح ہوئی - ان دونو کتہاون کا تاتپریہہ یہہ ہوا کہ اگرچہ یہہ دو نو راجا ذات کے چہتری تھے مگر بدیا نہ ہونیکی

سودر سنگیا مین شمار ہوئے اور اسطرح سودر کو بدیا کا ادھکار نہین -

چہتیسوان سوتر

संस्कारपरामर्शात् तदभावाभिलापाच्च ॥ ३६ ॥ सूत्र

سودر کو بدیا ادھکار نہ ہونیکی وجہہ اس سوتر مین کہتے ہین یہہ کہ شاستر مین بدیا گرہن کا انگ (بدیا پڑہنی کا لام

اپنین جنیو जनेऊ وغیرہ سنسکار ہونے پر منحصر ہے اونہین سی بھی بدیا پڑھنے کی لیے جنیو ہونیکا

سنسکار مقدم تر ہے اور سودر کو اپنین آد سنسکارون کے ہونیکا شاستر مین ابھاو کہا ہی

کہ سودر کے یہہ سنسکار نہونے چاہیئے) بدینوجہ سودر کو بدیا پڑہنے کا ادھکار نہین -

سینتیسوان سوتر

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥ ३७ ॥ सूत्र پچھلے ارتھ کی تائید مین

تیسرا اتہاس اور کہتے ہین کہ ایک رشی ست کام نام تھا اوسکا باپ اوسکے چہوٹا ہونے مین مر گیا - بگرشت کام

کی ماتا (والدہ) جابالا نامی زندہ رہی سو ست کام نے اپنی ماتا سے اپنا گوتر پوچھا - ماتا نے کہا کہ مجہے تیرے

پتا کا گوتر معلوم نہین تب ست کام مذکور نے گوتم رشی کے پاس جاکر التجا کی کہ میرا اپ نین (جنیو)

سنسکار کر دیجیئے - گوتم رشی نے گوتر دریافت کیا تو ست کام نے صحیح امر کہدیا کہ مجہے اپنا گوتر معلوم نہین

اور میری ماتا نے بہی کہا تہا کہ ہمکو تیرے پتا کا گوتر معلوم نہین مگر گوتم رشی کے پاس جاکر اپ نین سنسکار کراؤ -

تب گوتم رشی بولے کہ تیرے سچ بچن سے (ست گوئی) سے ظاہر ثابت ہوتا ہی کہ تو سودر نہین

پُج دھرمی ہی اسلیئے ہم تیرا اپ نین سنسکار کرین گے فقط - اس گوتم رشی کے واک سے بہی جانا جاتا

ہے کہ سودر کو بدیا کا ادھکار نہین -

اٹھتیسوان سوتر

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३८ ॥ सूत्र علاوہ تمثیلات

مذکور کے اس سمرتی کا پرمان کہتے ہین کہ

अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमिति ॥ न शूद्राय मतिं दद्यात् इति च ॥ मितिस्मृ

اور ارتھ اس سمرتی کا یہہ ہے جہان بین

ویدکا پاٹھ کرے اور تب سودر بیٹہا دیکہتا ہو یا وید کو سنے تو شیشہ یا لاکھ کو تپا گلا کر تس سودر کے سرون کانون کو

بھر دیوے پس اچھی طرح ظاہر ہے کہ سودر کو وید کا گیان نہین دینا چاہیئے کہ سودر کو بید کے سننے پڑھنے

بیدارتھ کے انوشٹھان کرنیکا ادھکار نہین ہے فقط اب اور پرسنگ کہتے ہین یعنی یہہ تحقیق کیجاتی ہی کہ

جسکر کے سب جگت چیشٹا کرتا وہ پران ہے یا چداتما ہے -

پھر پہلا چھینٹا دیتا ہے اور فقرہ مذکورہ پڑھتا ہے گویا کہ چھڑکنے سے وہ اسکو پاک کرتا ہے -

(۱۱) پھر منتر مذکور کا پنجم حصہ پڑھکر چھڑکتا ہے کہ اے اگنی کے مرغوب مین تجھکو چھڑکتا ہون - اسی طرح جس کیلیے چھڑکتا ہے اسی کا نام لیکر وہ اس پانی کو پاک کرتا ہے اور جب وہ بطریق مذکور پانی چھڑکنے سے فارغ ہوجاتا ہے اسوقت وہ -

(۱۲) یگیہ کے برتنون پر چھینٹا دیتا ہے اور پڑھتا ہے منتر ۱۳ کا ساتوان فقرہ کہ صاف ہوجاو دیوتاؤن کے کام کیلیے کیونکہ تو یگیہ کیلیے ہے اور دیوتاؤن کیلیے ہے لہذا وہ اسکو پاک کرتا ہے (پھر دوبارہ برتنون کو مخاطب کرکے کہتا ہے) جو کچھ کہ پانی سے منسوب ہے اسکو ناپاک نے چھوکر ناپاک کردیا ہے لہذا مین اس چھوت کو دور کرنیکیلیے پانی سے دور کرتا ہون کیونکہ جو کچھ اُن سے نسبت رکھتا ہے اسکو کسی ناپاک مثلاً بڑھئی[1] یا ویسے ہی کسی دوسرے شخص نے ایسے موقع پر چھوکر ناپاک کردیا ہے لہذا وہ انکو پانی کے ذریعہ پاک کرتا ہے[1] بدین وجہ وہ یہ کہتا ہے کہ جو کچھ پانی سے منسوب ہے الخ -

چوتھا برہمن

(۱) اب کرشن آجنم) کالے ہرن کی کھال ہاتھ مین لیتا ہے[2] یگیہ پورا کرنیکے لیے - اسکا مطلب یہ کہ ایک دفعہ دیوتا سے یگیہ (قربانی) بھاگ نکلی اور سیاہ ہرن کی شکل بنکر چاروں طرف گھومنے لگی جب دیوتا نے اسے خوب پہچان لیا تو وہ اسکی کھال اُتار کر اپنے ہمراہ لے آئے اور ہون مین مصروف ہوئے -

(۲) کھال کے سیاہ بال بجائے رگوید اور سفید بال بجائے سام وید کے ہین کہ سیاہ رگوید ہے اور سفید سام وید ہے یا اسکے برعکس اور بھورے سرخی نما بال یا دوسری قسم کے بال بجائے یجروید کے ہین - اسکو تم یقیناً جانو[3] -

[1] لوہار بڑھئی وغیرہ سے چھوت ماننا انکا چھوا ہوا ناپاک جاننا یہان سے ہویدا ہے یجروید کے اس تیرہوین منتر سے معلوم ہوا کہ چھوت کا مسئلہ وید سے چلا اور شت پتھ سے پیشتر کا رائج ہے منو وغیرہ مین بھی شودرون کے چھوئے ہوئے سے بچنے کی ممانعت لکھی ہے اسلیے چھینٹا دینے کے بعد وہ پانی کو پھر ایسے موقع پر رکھتا ہے کہ جہان اسکو پھر کوئی نہ چھوئے -

[2] ہرن کی کھال بڑے بھاری پنڈت کا نشان ہے کہ جسکے پاس وہ ہوتی ہے وہ بہت بڑا پنڈت سمجھا جاتا ہے اور سیاہ ہرن دریا سورستی اور دریا درشدتی اور ہمالیہ و بندھیاچل کے درمیان ہوتا ہے لہذا اس سرزمین مین یگیہ اور ریاضت وغیرہ کرنا چاہیے منو ادھیاے ۲ شلوک ۲۲ و ۲۳ -

[3] اتھروید کا ذکر یہان نہین ہے اس سے معلوم ہوتا ہے کہ شت پتھ کی تصنیف کیوقت اتھروید نہین تھا اسی وجہ اسکا ذکر بیان نہین ہوا - اور ہرن کی کھال کے کسی حصہ سے اسکو تشبیہ نہین دی اور منوسمرتی کے مطالعہ سے بھی یہی معلوم ہوتا ہے کہ اتھروید منو کے زمانہ مین بھی نہین تھا اسی واسطے اس مین رگ وید یجروید سام وید ہی کا ذکر پایا جاتا ہے اتھروید کا نام تک نہین ملتا - ابو رحمت

یہ بلی پاس ہوگیا اُسوقت وہ سب ملکر منوجی کے پاس گئے اور کہا کہ ہم پھر بلیدان کرنا چاہتے ہین منوجی نے دریافت کیا کہ اس مرتبہ کس جانور کا بلیدان کروگے انہون نے عرض کیا کہ تیری عورت کا - منوجی نے کہا بہتر ہے اسی کا کرڈالو - جب انہون نے اسکی بی بی مناوی کو ذبح کرکے بلیدان کردیا لیکن وہ آواز اس مین سے نکلکر اوکھلی موسل سل بٹہ وغیرہ ہون کے برتنون مین گھس گئی -

(۱۷) اور ہون کے برتنون مین ایسی گھس گئی کہ وہ اسکو پھر ان مین سے نکال نہ سکے اور وہی اسرون اور راکشسون کے مارڈالنے والی آواز نکلنی شروع ہوجاتی ہے جب برہمن اُن سے کام لیتا ہے پس جو شخص اس راز کو جانتا ہے وہ انکو بجا کر دشمنون کو نیست و نابود کرڈالتا ہے -

(۱۸) اور جب وہ کوٹتا ہے تو یہ پڑہتا ہے کو کُٹ تو اسی مدہوجہا منتر ۱ کا شروع کہ اے موسل تو شیرین زبان مرغ ہے کیونکہ درحقیقت تو وہ بھینسا ہے کہ جو دیوتاؤن کیلئے شیرین زبان تھا اور اسرون کیلئے زہروار آتشین گیس لہذا وہ یہ کہتا ہے کہ دیوتاؤن کیواسطے تو جو کچھ بھی تھا وہی ہم انسانون کے واسطے ہو جا پھر کہتا ہے کہ تو رس اور بخون کو یہان بُلا اور تیری ہی مدد سے ہم تمام لڑائیون کو فتح کرینگے - الخ

(۱۹) بعد ازان وہ چھاج اُٹھاتا ہے اور پڑہتا ہے ورش ورد ہم سیتی منتر مذکور کا ٹکڑا کہ تو پانی سے بڑہی ہوئی چیز کا بنا ہوا ہے - درحقیقت تو ایسا ہی ہے کیونکہ وہ مونج کے سرکنڈے یا اُسی کی انند تاڑ وغیرہ کے پتّے سے بنا ہے کہ جسکو بارش نے اُگایا اور بڑہایا ہے -

(۲۰) جب وہ کوٹے ہوئے دہان چھاج مین نکالتا ہے پڑہتا ہے پرتیوے الخ منتر مذکور کا ٹکڑا کہ تجکو یہ بارش سے بڑہا ہوا پہچانے - کیونکہ تو بھی بارش سے بڑہا ہے اسلئے کہ بارش ہی تجکو بڑہاتی ہے - ایسا کہدینے سے وہ بزعم خود چھاج اور دہانون میں شناسائی پیدا کرا دیتا ہے تاکہ وہ ایک دوسرے کو ضرر نہ پہنچائین -

(۲۱) بعد ازان دہان کوٹے ہوئے دہانون کو پھپوڑتا ہے اور پڑہتا ہے رکشسہ پرابوتا الخ منتر مذکور کا ٹکڑا کہ راکشس دور ہوگئے برے کام کرنے والے بھاگ گئے - اور پھٹکنے سے بھوسی جو کچھ نکلتی ہے اُسے زمین پر پھینکدیتا ہے اور پڑہتا ہے رکشسہ وابو منتر مذکور کا ٹکڑا کہ راکشس جلاوطن کردئے گئے ہین - کہ بزعم خود وہ راکشسون کو جلاوطن کردیتا ہے -

(۲۲) پھر کوٹے ہوئے دہانون مین سے وہ بن کوٹے ہوئے دانہ الگ نکالتا ہے اور پڑہتا ہے وایو الخ منتر مذکور کا ٹکڑا کہ ہوا انکو علیحدہ کرے اور پاک کرے کیونکہ پھٹکنے سے ہوا علیحدہ کرتی اور پاک کرتی ہے اور جو کچھ

(۳) اِسنے جواب دیاکہ جب تک کہ ہم چھوٹے رہتے ہین تو ہماری بربادی کا زیادہ خطرہ ہے کیونکہ اکثر مچھلی کھاجاتی ہین۔ تو مجھکو اول ایک برتن مین رکھو اور جب مین بڑہکر اسمین نہ سما سکون تب ایک گڈہا کہود کر اسمین مجھکو رکھو اور جب مین اسمین بھی بڑہکر نہ سما سکون تو دریا مین مجھکو چھوڑ دینا اور وہان مین خطرہ سے محفوظ رہون گی۔

(۴) وہ (رفتہ رفتہ) بڑہکر ایک بڑی مچھلی (جھاشا) ہوگئی کیونکہ یہہ سب سے بڑی ہوتی ہے۔ اِس کے بعد اسنے منو سے کہا کہ فلان و فلان سال مین طوفان آویگا تو میری نصیحت پر کاربند ہوا ور ایک ناؤ تیار کر اور جب طوفان بڑہے تو تو اس مین بیٹھ جانا اور مین تجھکو اِس سے بچالونگی۔

(۵) اِس طرح پر اس کی پرورش کرکے وہ مچھلی کو سمندر مین لے گیا اور جس سال کا کہ مچھلی نے پتہ دیا تھا اسی سال اس کی نصیحت پر کاربند ہوکر اسنے ناؤ کو تیار کیا۔ اور جب طوفان بڑہا تو وہ اسمین بیٹھ گیا تب وہ مچھلی اِسکے نزدیک تیر کر آئی اور منو نے اِسکے سینگھ سے جہاز کی رسی باندہ دی۔ اِس ذریعہ سے منو بہت جلد اس دور کے شمالی پہاڑ پر پہونچ گیا۔ یہ ہے ودرا و۔

(۶) پہر مچھلی نے منو سے کہا مینے تجھکو بچالیا ہے۔ لو ناؤ کو ایک درخت سے باندہ دے مگر جب تک تو پہاڑ پر نہ رہ ایسا نہو کہ پانی تجھکو کنارے پر چھوڑ دے یعنی پانی اوتر جاوے اور تو وہین رہے۔ لہذا جسقدر کہ پانی اوترتا جاوے اِسیقدر تو بہی نیچے اُترتا جائیو۔ آخر کار وہ بہی رفتہ رفتہ نیچے اُترتا گیا۔ اِسیوجہ سے اُس پہاڑ کو منو کا اُمتار کہتے ہین طوفان نے تمام جاندارون کو غرق کردیا صرف منو ہی اکیلا رہگیا۔ **فایدہ** مہابہارت و متسی پوران و دیگر کتب مین اِس پہاڑ کو ناؤ بندھنا کہتے ہین دیکھو اتہر وید ۱۹-۳۹-۸ جہان لواپرا بھرم سانا۔ ناو کا نیچے کھسکنا آیا ہے۔ (ابو رحمت)

(۷) پھر منو کو اولاد کی خواہش ہوی اسلئے اِسنے تپ کرنا شروع کیا۔ اِس درمیان مین اسنے پکا یجہ کیا اور اسنے پانی مین گھی دھی چھاچھ کو ڈالا۔ اسکے ایک سال بعد ایک عورت پیدا ہوئی اور مجسم ہوکر نمایان ہوئی اور گھی و مکھن اسکے نقش پامین تھے (یعنی پیر کے نیچے) مترا ورون اس سے ملے۔

(۸) اِنہون نے اِس سے پوچھا کہ تو کون ہے۔ اس نے جواب دیا کہ مین منو کی لڑکی ہون۔ تب اِنھون نے کہا کہ یہ کھئے آپ تو ہماری ہی ہین۔ اِس نے جواب دیا کہ نہین مین تو اسی کی ہون جس نے مجکو پیدا کیا ہے۔ اِنہون نے اپنا حصہ جتانا چاہا۔ مگر یا تو اِس نے انکار کیا یا اقرار کیا۔ ان سے گذر کر وہ منو کے نزدیک آئی۔

تو اسوقت دوسرا لوچاری (درشت اُوپل) ہاون دستے سے کام لیتا ہے اور وہ اُسوقت کیون کام لیتا ہے اسکی وجہ یہ ہے کہ۔

(۱۴) منوجی کے پاس ایک (رشبھ) سانڈ بھینسا تھا اُس مین ایک آواز تھی جو کہ اسرون اور راکشسون کو ہلاک کر ڈالتی تھی اور اُسکی پھونکارنے اور ڈکرنے سے تمام اسر اور راکشس ہمیشہ جلے جاتے تھے (کہ اسکی پھونکار دوزخ کی نار تھی) اسرون نے اس سے لاچار ہو کر آپس مین کمیٹی کی اور کہا کہ یہ بھینسا کیا ہی ہمارے لئے وبال جان ہے کہ آواز سے جدا اور پھونکار سے جدا مصیبت و ہلاکت ہمپر پیدا کر دیتا ہے آؤ اسکو ہم سب ملکر مار ڈالین اُس کمیٹی مین اُسرون کو بچہ کرانیوالے کلاتا اور کلی نام دو برہمن بھی شریک تھے۔

(۱۵) انہون نے مشورہ کہا کہ ہمنے سُنا ہے کہ منوجی دیوتاؤن سے بہت ڈرتے ہین لہذا ہمکو بھی یقین کرنا چاہئے کہ وہ ان سے ضرور ڈرتے ہین تم دیوتاؤن کیلئے اسکے بھینسے کو بلیدان کر ڈالو پھر باہم خوب پختت و پز کر کے منوجی کے پاس گئے اور کہنے لگے کہ اے منو ہم بلیدان کرنا چاہتے ہین وہ بولا کس چیز کا انہون نے جواب دیا کہ تیرے اس بھینسے کا منوجی نے کہا کہ ایسا ہی کرو۔ تب اُنہون نے اس بھینسے کو بلیدان کر ڈالا مگر وہ آواز اس سے نکلکر

(۱۶) منوجی کی بی بی مناوی کے اندر داخل ہو گئی۔ اب اسکی آواز اور سانس سے اسر اور راکشس جلنے پھنکنے لگے اور پہلے سے زیادہ وبال مین مبتلا ہوئے۔ کیونکہ انسان زیادہ تر بولتا اور لمبی لمبی سانس لیتا ہے اسرون اور راکشسون نے پھر کمیٹی کی اُنکے دونو پروہت بھی موجود تھے پھر انہون نے یہی کہا کہ ہمنے سُنا ہے کہ منوجی دیوتاؤن سے بہت ڈرتے ہین اور ہم کو بھی یقین کرنا چاہئے کہ وہ بہت ڈرتے ہین (تم دیوتاؤن کے بچہ مین اسکی بیوی کو بلیدان کر ڈالو) اس
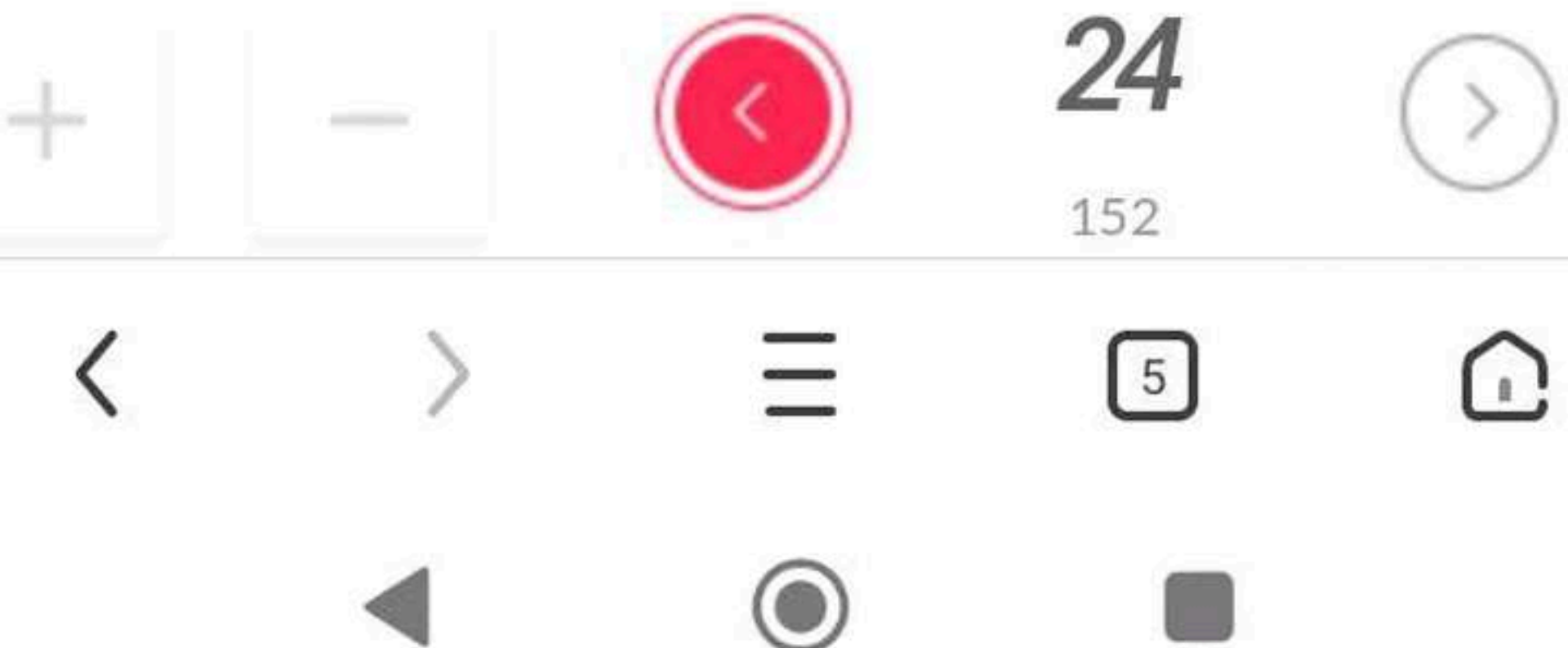
سیر بلی پاس ہو گیا اُسوقت وہ سب ملکر منوجی کے پاس گئے اور کہا کہ ہم پھر بلیدان کرنا چاہتے ہین منوجی نے دریافت

(۲۰) اگر اسکے مُنہ سے کوئی بات خلاف وقت نکل جاوے تو فوراً رگ یا یجر وید کا منتر وشنو کی تعریف مین پڑہے۔ کیونکہ وشنو ہی یجہ ہے گویا پہر وہ یجہ پر قائض ہوگیا اور یہ اِس بات کے کرنیکا عوض ہی۔

(۲۱) پھر جب کہ ادھریو یہ کہے کہ اے برہمن کیا مین آگے بڑہون تو برہمن یہ پڑہے۔ ادہیائے منتر ۱۲ ترجمہ۔ اے بزرگ ساوتری یہ تیرا یجہ ہے اور تجہی کے واسطے انہون نے کیا ہے **ش** اِس طرح گویا وہ ساوتری کی تحریک کا خواستگار ہے کیونکہ ساوتری دیوتاؤن کا محرک ہے۔ اور برہمن برہسپتی کے واسطے۔ کیونکہ برہسپتی دیوتاؤن کا برہمن ہے لہذا وہ یجہ کو اسکے واسطے کرتا ہے جو کہ دیوتاؤن کا برہمن ہے۔ اور یجہ کو ترقی پذیر کرو۔ اور یجمان کو اور مجہہ کو ترقی پذیر کرو۔ اِسمین کوئی پیچیدہ مضمون نہین ہے۔

(۲۲) پھر وہ پڑہتا ہے۔ ادہیائے مذکور کا منتر ۱۳۔ ترجمہ اِس کا دماغ گھی کے بھانے مین خوش ہو۔ **ش** اور دماغ (من) سے مراد یہ کہ تمام دنیا حاصل (اپتام) لہذا وہ تمام کو حاصل کرتا ہے **ت** اور برہسپتی اِس یجہ کو پہیلا وے۔ اور یجہ کو بے ضرری سے آرام دے **ش** لہذا وہ اسکو آرام دیتا ہے جو کہ اِس طرف سے کاٹ لیا گیا تہا۔ تمام دیوتا یہان آکر خوش ہون۔ اور تمام دیوتاؤن سے مراد تمام ہے لہذا وہ تمام کے ذریعہ یجہ کو آرام دیتا ہے۔ پھر کہتا ہے۔ آگے بڑہو۔ اگر تم پسند کرو یا اسکو نہ بھی کہی۔

آٹھوان ادھیا

پھلا برہمن

اِڈا کے بیان مین

(۱) صبح کے وقت وے منو کے واسطے نہانے کو پانی لائے۔ جیسا کہ اب بہی وے ہاتہہ دہونے کو اکثر پانی لاتے ہین۔ جبکہ وہ نہا رہا تہا تو ایک مچہلی اسکے ہاتہہ مین آگئی۔

(۲) اسنے منو سے یہ کہا تہا کہ تم مجہکو پرورش کرو مین تمکو بچالونگی (منو نے دریافت کیا کہ کس چیز سے تو مجہکو بچالیگی (اسنے جواب دیا کہ) ایک طوفان تمام جانداروں کو غرق کردیگا اِس سے مین تجہکو بچالونگی (تب منو نے پوچھا کہ) کس طرح مین تمہاری پرورش کرون۔

फिर त्रेता आदि युगोंमें इन सभी वर्षोंका एक चतुर्थांश न्यून हो जाता है, यथा त्रेताके मनुष्य तीन सौ वर्ष, द्वापरके दो सौ वर्ष तथा कलियुगके एक सौ वर्षतक जीवन धारण करते हैं। इन चारों युगोंके धर्म भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान प्रधान धर्म माना गया है।

परम द्युतिमान् परमेश्वरने सृष्टिकी रक्षाके लिये अपने मुख, भुजा, ऊरु और चरणोंसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार वर्णोंको उत्पन्न किया और उनके लिये अलग-अलग कर्मोंकी कल्पना की। ब्राह्मणोंके लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना यज्ञ कराना तथा दान देना और दान लेना—ये छः कर्म निश्चित किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना तथा प्रजाओंका पालन आदि कर्म क्षत्रियोंके लिये नियत किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशुओंकी रक्षा करना, खेती-व्यापारसे धनार्जन करना—ये काम वैश्योंके लिये निर्धारित किये गये और इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना—यह एक मुख्य कर्म शूद्रोंका नियत किया गया है।

हैं और मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें विद्वान् कृतबुद्धि और कृतबुद्धियोंमें कर्म करने इनसे ब्रह्मवेत्ता—ब्रह्मज्ञानी श्रे 20 धर्म-सम्पादन करनेके लिये है ब्राह्मण ब्रह्मत्व तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त

राजा शतानीकने पूछा—हे महामुने और ब्रह्मत्व अति दुर्लभ हैं, फिर ब्राह्मण ऐसे गुण होते हैं, जिनके कारण वह करता है। कृपाकर आप इसका वर्ण

सुमन्तु मुनि बोले—हे राजन्! अ ही उत्तम बात पूछी है, मैं आपको वे हूँ, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनें।

जिस ब्राह्मणके वेदादि शास्त्रोंमें निर्दि पुंसवन आदि अड़तालीस संस्कार हुए हों, वही ब्राह्मण ब्रह्मलोक और प्राप्त करता है। संस्कार ही ब्रह्मत्व-प्रा कारण है, इसमें कोई संदेह नहीं।

राजा शतानीकने पूछा—महात्मन्! कौनसे हैं, इस विषयमें मुझे महान् क रहा है। कृपाकर आप इन्हें बतायें।

सुमन्तुजी बोले—राजन्! वेदादि शास्त्रोंमें जिन संस्कारोंका निर्देश हुआ है, उनका मैं वर्णन करता हूँ—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, चार प्रकारके वेदव्रत, वेदस्नान, विवाह, पञ्चमहायज्ञ (जिनसे देवता, पितरों, मनुष्य, भूत और ब्रह्मकी तृप्ति होती है), सप्तपाकयज्ञ-संस्था—अष्टकाद्वय, पार्वण, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री (शूलगव) तथा आश्वयुजी, सप्तहविर्यज्ञ-संस्था—अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य, निरूढ-पशुबन्ध, सौत्रामणी और सप्तसोम-संस्था—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम—ये चालीस ब्राह्मणके संस्कार हैं। इनके साथ ही ब्राह्मणमें आठ आत्मगुण भी अवश्य होने चाहिये, जिससे ब्रह्मकी प्राप्ति होती

अस्पृहा—ये आठ आत्मगुण हैं। परिभाषा इस प्रकार है—

गुणीके गुणोंको न छिपाना अर्था अपने गुणोंको प्रकट न करना तथा देखकर प्रसन्न न होना **अनसूया** है। मित्र और शत्रुमें अपने समान व्यव दूसरेका दुःख दूर करनेकी इच्छा मन, वचन अथवा शरीरसे कोई दुः तो उसपर क्रोध और वैर न कर अभक्ष्य वस्तुका भक्षण न करना, नि सङ्ग न करना और सदाचरणमें स्थि कहा जाता है। जिन शुभ कर्मोंके क कष्ट होता है, उस कर्मको हठात् नहीं यह **अनायास** है। नित्य अच्छे क और बुरे कर्मोंका परित्याग करना

(अन्न)-को देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे ब्राह्मण हवन करते हैं। स्वाहाकार तथा स्वधाकारसे देवताओं और पितरोंकी तृप्ति होती है। जिस प्रकार राज्ञी अपने दो रूपोंमें हुई और ये जिनकी पुत्री हैं तथा इनकी जो संतानें हुईं उनका हम वर्णन करते हैं, इसे आप सुनें—

साम्ब! ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके कश्यप, कश्यपसे हिरण्यकशिपु, हिरण्यकशिपुसे प्रह्लाद, प्रह्लादसे विरोचन नामका पुत्र हुआ। विरोचनकी बहिनका विवाह विश्वकर्माके साथ हुआ, जिससे संज्ञा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। मरीचिकी सुरूपा नामकी कन्याका विवाह अंगिरा ऋषिसे हुआ, जिससे बृहस्पति उत्पन्न हुए। बृहस्पतिकी ब्रह्मवादिनी बहिनने आठवें प्रभास नामक वसुसे पाणिग्रहण किया, जिसका पुत्र विश्वकर्मा समस्त शिल्पोंको जाननेवाला हुआ। उन्हींका नाम त्वष्टा भी है। जो देवताओंके बढ़ई हुए। इन्हींकी कन्या संज्ञाको राज्ञी कहा जाता है। इन्हींको द्यौ, त्वाष्ट्री, प्रभा तथा सुरेणु भी कहते हैं। इन्हीं संज्ञाकी छायाका नाम निक्षुभा है। सूर्यभगवान्‌की संज्ञा नामक भार्या बड़ी ही रूपवती और पतिव्रता थी। किंतु भगवान् सूर्यनारायण मानवरूपमें उसके समीप नहीं जाते थे और अत्यधिक तेजसे परिव्याप्त होनेके कारण सूर्यनारायणका वह स्वरूप सुन्दर मालूम नहीं होता था। अतः वह संज्ञाको भी अच्छा नहीं लगता था। संज्ञासे तीन संतानें उत्पन्न हुईं, किंतु सूर्यनारायणके तेजसे व्याकुल होकर वह अपने पिताके घर चली गयी और हजारों वर्षतक वहाँ रही। जब पिताने संज्ञासे पतिके घर जानेके लिये अनेक बार कहा, तब वह उत्तर कुरुदेशको चली गयी। वहाँ वह अश्विनीका रूप धारण करके तृण आदि चरती हुई समय बिताने लगी।

सूर्यभगवान्‌के समीप संज्ञाके रूपमें उसकी छाया निवास करती थी। सूर्य उसे संज्ञा ही समझते थे। इससे दो पुत्र हुए और एक कन्या हुई। श्रुतश्रवा तथा श्रुतकर्मा—ये दो पुत्र और अत्यन्त सुन्दर तपती नामकी कन्या छायाकी संतानें हैं। श्रुतश्रवा तो सावर्णि मनुके नामसे प्रसिद्ध होगा और श्रुतकर्माने शनैश्चर नामसे प्रसिद्धि प्राप्त की। संज्ञा जिस प्रकारसे अपनी संतानोंसे स्नेह करती थी, वैसा स्नेह छायाने नहीं किया। इस अपमानको संज्ञाके ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि मनुने तो सहन कर लिया, किंतु उनके छोटे पुत्र यम (धर्मराज) सहन नहीं कर सके। छायाने जब बहुत ही क्लेश देना शुरू किया, तब क्रोधमें आकर बालपन तथा भावी प्रबलताके कारण उन्होंने अपनी विमाता छायाकी भर्त्सना की और उसे मारनेके लिये अपना पैर उठाया। यह देखकर क्रुद्ध विमाता छायाने उन्हें कठोर शाप दे दिया—'दुष्ट! तुम अपनी माँको पैरसे मारनेके लिये उद्यत हो रहे हो, इसलिये तुम्हारा यह पैर टूटकर गिर जाय।' छायाके शापसे विह्वल होकर यम अपने पिताके पास गये और उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पुत्रकी बातें सुनकर सूर्यनारायणने कहा—'पुत्र! इसमें कुछ विशेष कारण होगा, क्योंकि अत्यन्त धर्मात्मा तुझ-जैसे पुत्रके ऊपर माताको क्रोध आया है। सभी पापोंका तो निदान है, किंतु माताका शाप कभी अन्यथा नहीं हो सकता। पर मैं तुम्हारे ऊपर अधिक स्नेहके कारण एक उपाय कहता हूँ। यदि तुम्हारे पैरके मांसको लेकर कृमि भूमिपर चले जायँ तो इससे माताका शाप भी सत्य होगा और तुम्हारे पैरकी रक्षा भी हो जायगी।'

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! इस प्रकार पुत्रको आश्वासन देकर सूर्यनारायण छायाके समीप जाकर बोले—'छाये! तुम इनसे स्नेह क्यों नहीं करती

हो? माताके लिये तो सभी संतानें समान ही होनी चाहिये।' यह सुनकर छायाने कोई उत्तर नहीं दिया, जिससे सूर्यनारायणको क्रोध आ गया और वे शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। छाया भगवान् सूर्यको क्रुद्ध देखकर भयभीत हो गयी और उसने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बतला दिया। तब सूर्य अपने ससुर विश्वकर्माके पास गये। अपने जामाता सूर्यको क्रुद्ध देखकर विश्वकर्माने उनका पूजन किया तथा मधुर वचनोंसे शान्त किया और कहा—'देव! मेरी पुत्री संज्ञा आपके अत्यन्त तेजको सहन न कर सकनेके कारण वनको चली गयी है और वह आपके उत्तम रूपके लिये वहाँपर महान् तपस्या कर रही है। ब्रह्माजीने मुझे आज्ञा दी है कि यदि उनकी अभिरुचि हो तो तुम संसारके कल्याणके लिये सूर्यको तराशकर उत्तम रूप बनाओ।' विश्वकर्माका यह वचन सूर्यनारायणने स्वीकार कर लिया और तब विश्वकर्माने शाकद्वीपमें सूर्यनारायणको भ्रमि

देखकर संज्ञा अत्यन्त प्रीतिसे प्रसन्न हुई और वह उनके समीप गयी। तत्पश्चात् संज्ञासे 'रेवन्त' नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो भगवान् सूर्यनारायणके समान ही सौन्दर्य-सम्पन्न था।

इस प्रकार सावर्णि मनु, यम, यमुना, शनि, तपती, दो अश्विनीकुमार, वैवस्वत मनु और रेवन्त—ये सब सूर्यनारायणकी संतानें हुईं। यमकी भगिनी यमी यमुना नदी बनकर प्रवाहित हुई। सावर्णि आठवें मनु होंगे। सावर्णि मनु मेरु पर्वतके पृष्ठप्रदेशपर तपस्या कर रहे हैं। सावर्णिके भ्राता शनि एक ग्रह बन गये और उनकी भगिनी तपती नदी बन गयी, जो विन्ध्यगिरिसे निकलकर पश्चिमी समुद्रमें जाकर मिलती है। इस नदीमें स्नान करनेसे बहुत ही पुण्य प्राप्त होता है। सौम्या नदीसे तपतीका संगम और गङ्गा नदीसे वैवस्वती—यमुनाका संगम होता है। दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं, जिनकी विद्यासे ही वैद्यगण भूमिपर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं।

म्लेच्छवंशीय राजाओंका वर्णन तथा म्लेच्छ-भाषा आदिका संक्षिप्त परिचय

शौनकने पूछा—त्रिकालज्ञ महामुने! उस प्रद्योतने कैसे म्लेच्छ-यज्ञ किया? मुझे यह सब बतलायें।

श्रीसूतजीने कहा—महामुने! किसी समय क्षेमकके पुत्र प्रद्योत हस्तिनापुरमें विराजमान थे। उस समय नारदजी वहाँ आये। उनको देखकर प्रसन्न हो राजा प्रद्योतने विधिवत् उनकी पूजा की। सुखपूर्वक बैठे हुए मुनिने राजा प्रद्योतसे कहा—'म्लेच्छोंके द्वारा मारे गये तुम्हारे पिता यमलोकको चले गये हैं। म्लेच्छ-यज्ञके प्रभावसे उनकी नरकसे मुक्ति होगी और उन्हें स्वर्गीय गति प्राप्त होगी। अतः तुम म्लेच्छ-यज्ञ करो।' यह सुनकर राजा प्रद्योतकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। तब उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर कुरुक्षेत्रमें म्लेच्छ-यज्ञको तत्काल आरम्भ करा दिया। सोलह योजनमें चतुष्कोण यज्ञ-कुण्डका निर्माण कर देवताओंका आवाहन कर उस राजाने म्लेच्छोंका हनन किया। ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर अभिषेक कराया। इस यज्ञके प्रभावसे उनके पिता क्षेमक स्वर्गलोक चले गये। तभीसे राजा प्रद्योत सर्वत्र पृथ्वीपर म्लेच्छहन्ता (म्लेच्छोंको मारनेवाले) नामसे प्रसिद्ध हो गये। उनका पुत्र वेदवान् नामसे प्रसिद्ध हुआ।

१-विभिन्न पुराणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी स्थितिकालका उल्लेख कुछ अन्तरसे प्राप्त होता है, विशेषकर महाभारत, भागवत, हरिवंश, विष्णुपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण और गर्गसंहितामें भी उनका विस्तृत चरित्र प्राप्त होता है। अधिकांश स्थलोंपर उनका स्थितिकाल एक सौ पचीस वर्ष ही निर्दिष्ट है।

२-इनके शासनकालमें ही गङ्गा हस्तिनापुरके अधिकांश भागको बहा ले गयीं। अतः इन्होंने कौशाम्बीको राजधानी बनाया, जो प्रयागसे चार योजन पश्चिम थी। (विष्णुपुराण अंश ४। अ० २१)

म्लेच्छरूपमें स्वयं कलिने ही राज्य किया था। अनन्तर कलिने अपनी पत्नीके साथ नारायणकी पूजाकर दिव्य स्तुति की; स्तुतिसे प्रसन्न होकर नारायण प्रकट हो गये। कलिने उनसे कहा—'हे नाथ! राजा वेदवान्के पिता प्रद्योतने मेरे स्थानका विनाश कर दिया है और मेरे प्रिय म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया है।'

भगवान्ने कहा—कले! कई कारणोंसे अन्य युगोंकी अपेक्षा तुम श्रेष्ठ हो। अनेक रूपोंको धारणकर मैं तुम्हारी इच्छाको पूर्ण करूँगा। आदम नामका पुरुष और हव्यवती (हौवा) नामकी पत्नीसे म्लेच्छवंशोंकी वृद्धि करनेवाले उत्पन्न होंगे। यह कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये और कलियुगको इससे बहुत आनन्द हुआ। उसने नीलाचल पर्वतपर आकर कुछ दिनोंतक निवास किया।

राजा वेदवान्को सुनन्द नामका पुत्र हुआ और बिना संततिके ही वह मृत्युको प्राप्त हुआ। इसके बाद आर्यावर्त देश सभी प्रकार क्षीण हो गया और धीरे-धीरे म्लेच्छोंका बल बढ़ने लगा। तब नैमिषारण्यनिवासी अठासी हजार ऋषि-मुनि हिमालयपर चले गये और वे बदरी-क्षेत्रमें आकर भगवान् विष्णुकी कथा-वार्तामें संलग्न हो गये।

सूतजीने पुनः कहा—मुने! द्वापरयुगके सोलह हजार वर्ष शेष कालमें आर्य-देशकी भूमि अनेक कीर्तियोंसे समन्वित रही; पर इतने समयमें कहीं शूद्र और कहीं वर्णसंकर राजा भी हुए। आठ हजार दो सौ दो वर्ष द्वापरयुगके शेष रह जानेपर यह भूमि म्लेच्छ देशके राजाओंके प्रभावमें आने लग गयी। म्लेच्छोंका आदि पुरुष आदम, उसकी स्त्री हव्यवती (हौवा) दोनों इन्द्रियोंका दमनकर ध्यानपरायण रहते थे। ईश्वरने प्रदान नगरके पूर्वभागमें चार कोसवाला एक रमणीय महावनका निर्माण किया। पापवृक्षके नीचे जाकर कलियुग सर्परूप धारणकर हौवाके पास आया। उस धूर्त कलिने हौवाको धोखा देकर गूलरके पत्तोंमें लपेटकर दूषित वायुयुक्त फल उसे खिला दिया, जिससे विष्णुकी आज्ञा भंग हो गयी। इससे अनेक पुत्र हुए, जो सभी म्लेच्छ कहलाये। आदम पत्नीके साथ स्वर्ग चला गया। उसका श्वेत नामसे विख्यात श्रेष्ठ पुत्र हुआ, जिसकी एक सौ बारह वर्षकी आयु कही गयी है। उसका पुत्र अनुह हुआ, जिसने अपने पितासे कुछ कम ही वर्ष शासन किया। उसका पुत्र कीनाश था, जिसने पितामहके समान राज्य किया। महल्लल नामका उसका पुत्र हुआ, उसका पुत्र मानगर हुआ। उसको विरद नामका पुत्र हुआ और अपने नामसे नगर बसाया। उसका पुत्र विष्णुभक्तिपरायण हनूक हुआ। फलोंका हवन कर उसने अध्यात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया। म्लेच्छधर्मपरायण वह सशरीर स्वर्ग चला गया। इसने द्विजोंके आचार-विचारका पालन किया और देवपूजा भी की, फिर भी वह विद्वानोंके द्वारा म्लेच्छ ही कहा गया। मुनियोंके द्वारा विष्णुभक्ति, अग्निपूजा, अहिंसा, तपस्या और इन्द्रियदमन—ये म्लेच्छोंके धर्म कहे गये हैं। हनूकका पुत्र मतोच्छिल हुआ। उसका पुत्र लोमक हुआ, अन्तमें उसने स्वर्ग प्राप्त किया। तदनन्तर उसका न्यूह नामका पुत्र हुआ, न्यूहके सीम, शम और भाव—ये तीन पुत्र हुए। न्यूह आत्मध्यानपरायण तथा विष्णुभक्त था। किसी समय उसने स्वप्नमें विष्णुका दर्शन प्राप्त किया और उन्होंने न्यूहसे कहा—'वत्स! सुनो, आजसे सातवें दिन प्रलय होगा। हे भक्तश्रेष्ठ! तुम सभी लोगोंके साथ नावपर चढ़कर अपने जीवनकी

रक्षा करना। फिर तुम बहुत विख्यात व्यक्ति बन जाओगे। भगवान्‌की बात मानकर उसने एक सुदृढ़ नौकाका निर्माण कराया, जो तीन सौ हाथ लम्बी, पचास हाथ चौड़ी और तीस हाथ ऊँची थी और सभी जीवोंसे समन्वित थी। विष्णुके ध्यानमें तत्पर होता हुआ वह अपने वंशजोंके साथ उस नावपर चढ़ गया। इसी बीच इन्द्रदेवने चालीस दिनोंतक लगातार मेघोंसे मूसलधार वृष्टि करायी। सम्पूर्ण भारत सागरोंके जलसे प्लावित हो गया। चारों सागर मिल गये, पृथ्वी डूब गयी, पर हिमालय पर्वतका बदरी-क्षेत्र पानीसे ऊपर ही रहा, वह नहीं डूब पाया। अट्ठासी हजार ब्रह्मवादी मुनिगण, अपने शिष्योंके साथ वहीं स्थिर और सुरक्षित रहे। न्यूह भी अपनी नौकाके साथ वहीं आकर बच गये। संसारके शेष सभी प्राणी विनष्ट हो गये। उस समय मुनियोंने विष्णुमायाकी स्तुति की।

मुनियोंने कहा—'महाकालीको नमस्कार है, माता देवकीको नमस्कार है, विष्णुपत्नी महालक्ष्मीको, राधादेवीको और रेवती, पुष्पवती तथा स्वर्णवतीको नमस्कार है। कामाक्षी, माया और माताको नमस्कार है। महावायुके प्रभावसे, मेघोंके भयंकर शब्दसे एवं उग्र जलकी धाराओंसे दारुण भय उत्पन्न हो गया है। भैरवि! तुम इस भयसे हम किंकरोंकी रक्षा करो।' देवीने प्रसन्न होकर जलकी वृद्धिको तुरंत शान्त कर दिया हिमालयकी प्रान्तवर्ती शिषिणा नामकी भूमि एक वर्षमें जलके हट जानेपर स्थलके रूपमें दीखने लगी। न्यूह अपने वंशजोंके साथ उस भूमिपर आकर निवास करने लगा।

शौनकने कहा—मुनीश्वर! प्रलयके बाद इस समय जो कुछ वर्तमान है, उसे अपनी दिव्य दृष्टिके प्रभावसे जानकर बतलायें।

सूतजी बोले—शौनक! न्यूह नामका पूर्वनिर्दिष्ट म्लेच्छ राजा भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लीन रहने लगा, इससे भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उसके वंशकी वृद्धि की। उसने वेद-वाक्य और संस्कृतसे बहिर्भूत म्लेच्छ-भाषाका विस्तार किया और कलिकी वृद्धिके लिये ब्राह्मी* भाषाको अपशब्दवाली भाषा बनाया और उसने अपने तीन पुत्रों—सीम, शम तथा भावके नाम क्रमशः सिम, हाम तथा याकूत रख दिये। याकूतके सात पुत्र हुए—जुम्र, माजूज, मादी, यूनान, तुवलोम, सक तथा तीरास। इन्हींके नामपर अलग-अलग देश प्रसिद्ध हुए। जुम्रके दस पुत्र हुए। उनके नामोंसे भी देश प्रसिद्ध हुए। यूनानकी अलग-अलग संतानें इलीश, तरलीश, कित्ती और हूदा—इन चार नामोंसे प्रसिद्ध हुईं तथा उनके नामसे भी अलग-अलग देश बसे। न्यूहके द्वितीय पुत्र हाम (शम)-से चार पुत्र कहे गये हैं—कुश, मिश्र, कूज तथा कनआँ। इनके नामपर भी देश प्रसिद्ध हैं। कुशके छः पुत्र हुए— सवा, हबील, सर्वत, उरगम, सवतिका और महाबली निमरूह। इनकी भी कलन, सिना, रोरक, अक्कद, बावुन और रसनादेशक आदि संतानें हुईं। इतनी बातें ऋषियोंको सुनाकर सूतजी समाधिस्थ हो गये।

बहुत वर्षोंके बाद उनकी समाधि खुली और वे कहने लगे—'ऋषियो! अब मैं न्यूहके ज्येष्ठ पुत्र राजा सिमके वंशका वर्णन करता हूँ, म्लेच्छ राजा सिमने पाँच सौ वर्षोंतक भलीभाँति राज्य किया। अर्कन्सद उसका पुत्र था, जिसने चार सौ चौंतीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र सिंहल हुआ, उसने भी चार सौ साठ वर्षोंतक राज्य

* ब्राह्मीको लिपियोंका मूल माना गया है। राजा न्यूहके हृदयमें स्वयं प्रविष्ट होकर भगवान् विष्णुने उसकी बुद्धिको प्रेरित किया, इसलिये उसने अपनी लिपिको उलटी गतिसे दाहिनेसे बायीं ओर प्रकाशित किया, जो उर्दू, अरबी, फारसी और हिब्रूकी लेखन-प्रक्रियामें देखी जाती है।

किया। उसका पुत्र इब्र हुआ, उसने पिताके समान ही राज्य किया। उसका पुत्र फलज हुआ, जिसने दो सौ चालीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र रऊ हुआ, उसने दो सौ सैंतीस वर्षोंतक राज्य किया। उसके जूज नामक पुत्र हुआ, पिताके समान ही उसने राज्य किया। उसका पुत्र नहूर हुआ, उसने एक सौ साठ वर्षोंतक राज्य किया। हे राजन्! अनेक शत्रुओंका भी उसने विनाश किया। नहूरका पुत्र ताहर हुआ, पिताके समान उसने राज्य किया। उसके अविराम, नहूर और हारन—ये तीन पुत्र हुए।

हे मुने! इस प्रकार मैंने नाममात्रसे म्लेच्छ राजाओंके वंशोंका वर्णन किया। सरस्वतीके शापसे ये राजा म्लेच्छ-भाषा-भाषी हो गये और आचारमें अधम सिद्ध हुए। कलियुगमें इनकी संख्याकी विशेष वृद्धि हुई, किंतु मैंने संक्षेपमें ही इन वंशोंका वर्णन किया। संस्कृत-भाषा भारतवर्षमें ही किसी तरह बची रही*। अन्य भागोंमें म्लेच्छ-भाषा ही आनन्द देनेवाली हुई।

सूतजी पुनः बोले—भार्गवतनय महामुने शौनक!

विश्वके अधिकांश भागकी भूमि म्लेच्छमयी हो गयी तथा भाँति-भाँतिके मत चल पड़े। सरस्वतीका तट ब्रह्मावर्त-क्षेत्र ही शुद्ध बचा था। मूशा नामका व्यक्ति म्लेच्छोंका आचार्य और पूर्व-पुरुष था। उसने अपने मतको सारे संसारमें फैलाया। कलियुगके आनेसे भारतमें देवपूजा और वेदभाषा प्रायः नष्ट हो गयी। भारतमें भी धीरे-धीरे प्राकृत और म्लेच्छ-भाषाका प्रचार प्रारम्भ हुआ। व्रजभाषा और महाराष्ट्री—ये प्राकृतके मुख्य भेद हैं। यावनी और गुरुण्डिका (अंग्रेजी) म्लेच्छ-भाषाके मुख्य भेद हैं। इन भाषाओंके और भी चार लाख सूक्ष्म भेद हैं। प्राकृतमें पानीयको पानी और बुभुक्षाको भूख कहा जाता है। इसी तरहसे म्लेच्छ-भाषामें पितृको पैतर-फादर और भ्रातृको बादर-ब्रदर कहते हैं। इसी प्रकार आहुतिको आजु, जानुको जैनु, रविवारको संडे, फाल्गुनको फरवरी और षष्टिको सिक्सटी कहते हैं। भारतमें अयोध्या, मथुरा, काशी आदि पवित्र सात पुरियाँ हैं, उनमें भी अब हिंसा होने लग गयी है। डाकू, शबर, भिल्ल तथा मूर्ख व्यक्ति भी आर्यदेश—भारतवर्षमें

कलियुगके अन्तमें प्रलयके बाद पुनः सत्ययुगमें सत्यधर्मके रूपमें प्रतिष्ठित होऊँगा।' यह सुनकर देवगण वहीं अन्तर्लीन हो गये।

मुने! इस प्रकार युग-युगमें भगवान् श्रीहरिकी क्रीडाएँ होती रहती हैं। विश्वव्यापक भगवान्‌के इस रहस्यको विष्णुभक्त ही जानते हैं। विष्णुकी इच्छाके अनुसार ही सनातनी विष्णुमाया विविध लोकोंकी रचना कर महाकाली हो सम्पूर्ण चराचर विश्वको कालकवलित कर महागौरीके रूपमें हो जायँगी। (अध्याय ५)

दिल्ली नगरपर पठानोंका शासन और तैमूरलंगका उत्पात

महर्षि शौनकने पूछा—सूतजी महाराज! पृथ्वीराजके बाद कौन-कौन राजा उत्पन्न हुए? इसे आप बतायें।

सूतजीने कहा—मुने! पैशाच (पठान) राजा कुतुकोद्दीन (कुतुबुद्दीन) दिल्लीका शासक था और अति सुरम्य वलीगढ़ यादवोंसे रक्षित था। कुतुकोद्दीन दस हजार सैनिकोंको साथ लेकर युद्धके लिये वहाँ गया और वीरसेनके पौत्र श्रेष्ठ भूपसेनको जीतकर दिल्ली नगरमें राज्य करने लगा। इसी समय अनेक देशोंके राजागण वहाँ आये। उन लोगोंने कुतुकोद्दीनको जीतकर देशसे बाहर कर दिया। इस समाचारको सुनकर सहोद्दीन (शहाबुद्दीन) पुनः (गौरसे) दिल्ली पहुँच गया। उस दैत्यराजने राजाओंको जीतकर अनेक मूर्तियों और देवमन्दिरोंको खण्डित कर दिया। इसके बाद बहुत-से म्लेच्छ वहाँ आकर रहने लगे। पाँच-छः अथवा सात वर्षोंतक राज्यकर वे दिवंगत हो गये।

मुनिगणो! इन सभी म्लेच्छ राजाओंने अनेक मन्दिरोंको तोड़ा है, सभी तीर्थों और आश्रमोंको दूषित कर दिया है, अतः आपलोग मेरे साथ हिमालयके ऊपर बदरीवनकी ओर प्रस्थान कीजिये। यह सुनकर नैमिषारण्यवासी सभी ऋषिगण दुःखी होकर सूतजीके साथ नैमिषको छोड़कर बदरीक्षेत्र चले गये। वहाँ सभी लोग समाधिस्थ होकर सर्वमय श्रीहरिके ध्यानमें स्थित हो गये।

कुछ समय बाद समाधिसे जगनेपर ऋषियोंने सूतजी महाराजसे पुनः कल्पके इतिहासके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की।

सूतजीने पुनः कहा—श्रेष्ठ मुनिगण! मैंने योगनिद्रामें जो देखा है, उस कल्पके वृत्तान्तको कह रहा हूँ। उसे आपलोग सुनिये। अनन्तर मुकुल (मुगलवंशी) म्लेच्छ राजा हुआ। वह म्लेच्छराज तिमिरलिङ्ग (तैमूरलंग) मध्यदेशमें आया। उस कालस्वरूप म्लेच्छ राजाने सभी आर्यों तथा म्लेच्छ राजाओंको जीतकर देहली नगरीमें बहुत उपद्रव किया और उसने आर्योंको बुलाकर कहा—'तुम सभी मूर्तिपूजक हो। शालग्राम तो पत्थर है, उसका पूजन कैसे उचित है? तुम सब उसे विष्णु मानते हो, वह विष्णु तो है नहीं, अतः तुम सभीके जितने वेद-शास्त्र हैं, उन्हें मुनियोंने संसारको ठगनेके लिये बनाया है।' ऐसा कहकर तैमूरलंगने शालग्रामकी मूर्तिको जबरदस्ती छीन लिया और जलती हुई आगमें फेंक दिया तथा पूजित सभी शालग्रामशिलाओंको ऊँटोंपर लादकर वह अपने देश चला गया। उसने तैत्तिर (तातार) देशमें आकर अपना एक सुदृढ़ किला बनवाया। अपने सिंहासनपर आरोहण करनेके लिये शालग्रामशिलाका पादपीठ बनवाया।

यह देखकर सभी देवता दुःखी होकर देवराज इन्द्रके पास गये और विलाप करते हुए इन्द्रसे बोले—'भगवन्! हमलोगोंकी स्थिति तो शालग्राम-शिलामें है, परंतु म्लेच्छराज तैमूरलंगने शालग्रामको पादपीठ बनवा लिया है।' देवताओंकी बात सुनकर

क्रुद्ध हो देवराज इन्द्रने हाथमें वज्र उठा लिया और बड़े वेगसे तैत्तिर देशकी ओर फेंका। उस वज्रके घोर शब्दसे उसका सारा देश टुकड़े-टुकड़े होकर खण्डित हो गया और वह म्लेच्छ अपने सभी सभासदोंके साथ मृत्युको प्राप्त हो गया। अनन्तर प्रसन्न हो देवताओंने उन सभी शालग्रामशिलाओंको ग्रहणकर गण्डकी नदीमें छोड़ दिया। पुनः वे सभी स्वर्गलोक चले आये। इन्द्रने देवताओंके साथ देवपूज्य वृहस्पतिसे कहा—'भगवन्! कलियुगके आनेपर बहुत दैत्य उत्पन्न हो गये हैं। वे वेदधर्मका उल्लंघन करके हमलोगोंके विनाशके लिये तैयार हो गये हैं, अतः आप हमारी रक्षा करें।'

बृहस्पति बोले—महेन्द्र! तुम्हारी जो श्रेष्ठ शची नामकी पत्नी है, उसे भगवान् विष्णुने वर दिया है कि 'कलियुगमें मैं तुम्हारे पुत्ररूपमें अवतरित होऊँगा। तुम्हारे आदेशसे वह देवी शची गौड़देशमें गङ्गाके किनारे शान्तिपुरमें ब्राह्मणीके रूपमें तथा तुम स्वयं ब्राह्मणरूपमें अवतरित होकर देवकार्यको सिद्ध करो।' यह सुनकर देवराज इन्द्र एकादश रुद्रों, अष्ट वसुओं तथा अश्विनीकुमारोंके साथ सूर्यके अत्यन्त प्रिय तीर्थराज प्रयागमें आये और उन्होंने माघमें मकरमें सूर्य होनेपर भगवान् सूर्यकी आराधना की। बृहस्पतिने आकर उन्हें भगवान् सूर्यका माहात्म्य बतलाया। (अध्याय ६)

भगवान् सूर्यके तेजसे आचार्य ईश्वरपुरी, आचार्य रामानन्द और निम्बार्काचार्यका आविर्भाव *

ऋषियोंने पूछा—सूतजी महाराज! देवगुरु बृहस्पतिने देवताओंको मण्डलस्थ भगवान् सूर्यका

इनके विवाहकी चिन्ता होने लगी। तब इन लोगोंके उत्तम विवाहके लिये उसने गन्धर्वपति तुम्बुरुको

अकबर आदि अन्तिम मुगल शासकोंका चरित्र; तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, तानसेन तथा बीरबल आदिके पूर्वजन्मोंका वृत्तान्त; गुरुण्ड, मौन और सर्वत्र म्लेच्छराज्यका विस्तार

सूतजी बोले—शौनक! इस प्रकार दैत्योंने बलिके पास जाकर अपनी पराजयका वृत्तान्त बतलाया। दैत्यराज बलिने देवताओंकी महान् विजय सुनकर रोषण नामक दैत्येन्द्रको बुलाकर कहा—'तुम तिमिरलिङ्ग (तैमूरलंग)-के पुत्र होकर सरुष नामसे प्रसिद्ध होगे। अत: तुम वहाँ जाकर दैत्योंके श्रेष्ठ कार्यका सम्पादन करो। इसपर उसने क्रुद्ध हो देहली आकर वेदमार्गस्थ पुरुषोंका नाश करना शुरू कर दिया। उसने पाँच वर्षतक राज्य किया। उसीका पुत्र बाबर हुआ, बीस वर्षतक

* यहाँ आदिशंकराचार्य आदि आचार्यगण अभिप्रेत न होकर कोई तत्कालीन शंकर आदि नामवाले महात्मा इष्ट प्रतीत होते हैं।

उसने राज्य किया। (कुछ वर्ष समरकन्दमें और कुछ दिन भारतमें।) उसका पुत्र होमायु (हुमायूँ) हुआ। मदान्ध होमायुने देवताओंका निरादर किया। तब देवताओंने नदीहाके उपवनमें स्थित कृष्णचैतन्यकी स्तुति की। स्तुति सुनकर हरि क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने तेजसे उसके राज्यमें विघ्न उत्पन्न किया। उनके सैन्योंद्वारा होमायुका पराजय हुआ। उस समय शेषशाक (शेरशाह)-ने रमणीय देहली नगरमें आकर पाँच वर्षतक अत्यन्त कुशलतापूर्वक राज्य किया। उन्हीं दिनोंकी बात है, शंकराचार्यके गोत्रमें उत्पन्न मुकुन्द नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने बीस शिष्योंके साथ प्रयागमें तप कर रहा था।'म्लेच्छराज बाबरके द्वारा देवताओंकी प्रतिमाओं आदिको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है' यह जानकर ब्राह्मण मुकुन्दने दु:खी होकर अग्निमें अपने प्राणोंकी आहुति दे दी। उसके बीस शिष्योंने भी गुरुके मार्गका ही अनुगमन किया। किसी समय ब्राह्मण मुकुन्दने गौके दूधके साथ गौके रोमका भी पान कर लिया था, इसी दोषके कारण वह दूसरे जन्ममें म्लेच्छयोनिमें उत्पन्न हुआ। जब हुमायूँ कश्मीर (अपने भाई मकरानके यहाँ काबुल-कश्मीरकी सीमा)-में निवास कर रहा था, तब उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि 'तुम्हारा पुत्र बड़ा प्रतापी और भाग्यशाली होगा। यह अकस्मात् (अक) प्राप्त वर (वरदान)-से उत्पन्न हुआ है, अत: इसका नाम 'अकबर' होगा और यह म्लेच्छ या पिशाचोंके मार्गका अनुसरण नहीं करेगा। यह श्रीधर, श्रीपति, शम्भु, वरेण्य, मधुव्रती, विमल, देववान्, सोम, वर्धन, वर्तक, रुचि, मान्धाता, मानकारी, केशव, माधव, मधु, देवापि, सोमपा, सूर तथा मदन—ये बीस जिसके शिष्य हैं, वही पूर्वजन्मका मुकुन्द ब्राह्मण भाग्यवश तुम्हारे घरमें इस रूपमें आया है।'

ऐसी आकाशवाणी सुनकर प्रसन्नचित्त हुमायूँने भूखसे पीड़ित व्यक्तियोंको दान दिया और प्रेमपूर्वक पुत्रका पालन किया। पुत्रकी दस वर्षकी अवस्था होनेपर वह देहलीमें आया और शेषशाकको पराजित कर वहाँका राजा हो गया। उसने एक वर्ष राज्य किया और बादमें उसका पुत्र अकबर राजा हुआ।

अकबर (मुकुन्द ब्राह्मण)-के राज्यप्राप्तिके बाद उसके पूर्वजन्मके सात प्रिय शिष्य (केशव, माधव, मधु, देवापि, सोमपा, सूर तथा मदन) इस जन्ममें भी पुन: उत्पन्न होकर अकबरके दरबारमें आये। मुकुन्द ब्राह्मणके शिष्य केशव अकबरके समयमें गानसेन (तानसेन) नामसे उत्पन्न हुए। पूर्वजन्मके माधव अकबरके समयमें वैजवाक् (बैजूबावरा) नामसे प्रसिद्ध हुए। पूर्वजन्मके मधु अकबरके समयमें सभी रागोंके ज्ञाता 'हरिदासगायक' नामसे विख्यात हुए। ये मध्वाचार्य-मतानुयायी प्रसिद्ध वैष्णव थे। पूर्वजन्मके देवापि अकबरके समयमें 'बीरबल' नामसे प्रसिद्ध हुए। वे पश्चिमी ब्राह्मण थे और उन्हें वाणीकी अधिष्ठात्री सरस्वतीदेवीका अभिमान था। पूर्वजन्मका गौतमवंशमें उत्पन्न सोमपा अकबरके समयमें 'मानसिंह' नामसे उत्पन्न हुआ और वह आर्यभूपशिरोमणि अकबरका सेनापति बना। पूर्वजन्मका शूर दक्षिण देशमें ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ, यह पण्डित था, इसका नाम हुआ 'बिल्वमंगल'। यह अकबरका मित्र बना। पूर्वजन्मका पूर्वदेशका ब्राह्मण मदन अकबरके समयमें 'चन्दल' नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह नर्तक और रह:क्रीडाविशारद था।

ये सात राजा अकबरके दरबारमें स्थित हुए और पूर्वजन्मके श्रीधर आदि तेरह शिष्य दूसरे स्थानोंमें प्रतिष्ठित हुए। अकबरके समयमें अनपके पुत्र श्रीधर ही पुराणोंमें निपुण तुलसीशर्मा (तुलसीदास)

नामसे प्रसिद्ध हुए। वे नारीसे शिक्षा प्राप्तकर राघवानन्दके शिष्य श्रीरामानन्दकी परम्परामें काशीमें अत्यन्त विरक्त वैष्णव कवि हुए। पूर्वजन्मके

ग्रन्थका निर्माण किया और ये रैदास-मार्गके अनुयायी बने। पूर्वजन्मके वर्तक 'रत्नभानु' नामसे उत्पन्न हुए, ये जैमिनि भाषाके रचयिता थे और

नामसे प्रसिद्ध हुए। वे नारीसे शिक्षा प्राप्तकर राघवानन्दके शिष्य श्रीरामानन्दकी परम्परामें काशीमें अत्यन्त विरक्त वैष्णव कवि हुए। पूर्वजन्मके श्रीपति अकबरके समयमें महान् अन्ध भक्त कवि 'सूरदास' के रूपमें उत्पन्न हुए, ये मध्वाचार्यके मतमें स्थित रहनेवाले थे। इन्होंने कृष्णलीलाका वर्णन किया। पूर्वजन्मके शम्भु अकबरके समयमें चन्द्रभट्टके कुलमें हरिप्रिय नामसे उत्पन्न हुए , ये विष्णुभक्त थे और रामानन्दके मतमें स्थित हुए। पूर्वजन्मके वरेण्य अकबरके समयमें अग्रभुक् (अग्रदास[१]) नामके प्रसिद्ध संत थे, जो रामानन्दके मतमें स्थित हुए। ज्ञान-ध्यानपरायण, भाषा-छन्दकी रचना करनेवाले पूर्वजन्मके कवि मधुव्रती अकबरके समयमें 'कीलक' नामसे विख्यात हुए। धीमान् कीलकने रामलीलाकी रचना की और रामानन्दमतके अनुयायी हुए। पूर्वजन्मके विमल अकबरके समयमें 'दिवाकर' नामसे प्रसिद्ध हुए और भगवती सीताके पावन चरित्रका गान किया तथा वे रामानन्दके मतमें स्थित हुए। इसी प्रकार पूर्वजन्मके देववान् अकबरके समयमें 'केशव' नामसे अवतीर्ण हुए, ये विष्णुस्वामीके अनुयायी बने। कविप्रिया आदिकी रचनाकर इन्होंने प्रेतत्व प्राप्त किया और राम-ज्योत्स्ना नामक ग्रन्थकी रचनाकर स्वर्ग प्राप्त किया। पूर्वजन्मके सोम 'व्यासदास' नामसे उत्पन्न हुए। ये निम्बादित्यके मतानुयायी हुए। इन्होंने रहःक्रीडा ग्रन्थकी रचनाकर स्वर्ग प्राप्त किया। पूर्वजन्मके वर्धन 'चरणदास' नामसे विख्यात हुए। इन्होंने ज्ञानमाला नामक ग्रन्थका निर्माण किया और ये रैदास-मार्गके अनुयायी बने। पूर्वजन्मके वर्तक 'रत्नभानु' नामसे उत्पन्न हुए, ये जैमिनि भाषाके रचयिता थे और रोपण-मतके अनुयायी थे। पूर्वजन्मके रुचि 'रोचन' नामसे उत्पन्न हुए। ये मध्वाचार्यके मतानुयायी थे। इन्होंने अनेक गानमयी लीला करके स्वर्ग प्राप्त किया। पूर्वजन्मके मान्धाता 'भूपति' नामके कायस्थ हुए। मध्वाचार्यके मतानुसार इन्होंने हिन्दी-भाषामें भागवतका सुन्दर अनुवाद किया। पूर्वजन्मके मानकारने नारीभावसे स्त्रीशरीरको प्राप्त किया और 'मीरा' के नामसे विख्यात राजाकी पुत्री हुई। मध्वाचार्यके मतको माननेवाली वह मीरा अत्यन्त प्रसिद्ध हुईं। उनका प्रबन्ध भयंकर कलिकालके लिये मङ्गलकर होगा।

अकबरने पचास वर्षतक निष्कण्टक राज्य किया और अन्तमें मरकर स्वर्ग चला गया। उसका पुत्र सलोमा—सलीम (जहाँगीर) था। उसने भी पिताके समान राज्य किया। उसका बेटा खुर्दक (खुसरो शाहजहाँ) था, उसने दस वर्षतक राज्य किया। उसके चार बेटे थे। उसका मध्यम बेटा नवरंग (औरंगजेब) था। उसने पिता और भाईको जीतकर राज्य किया। यह पूर्वजन्ममें अन्धक नामका प्रसिद्ध दैत्य था। इस कर्मभूमिमें अन्धकके अंशसे दैत्यराजकी आज्ञासे आया था। उसने चारों ओर अनेक मूर्तियोंको ध्वस्त किया। ऐसा देखकर देवताओंने आकर कृष्णचैतन्यसे कहा—'भगवन्! दैत्यराजका अंशभूत (औरंगजेब[२])' राजा उत्पन्न हुआ है, वह देवताओं और वेदोंका

१-ये बहुत बड़े सिद्ध महात्मा थे, इनकी कुण्डलिया प्रसिद्ध हैं। ये जयपुरके गलता गद्दीके संस्थापक थे। इनके सम्प्रदायके अधिकांश लोग दुग्धाहारपर जीवन-यापन करते थे। इससे इन्हें पयहारी कहा जाता था। भक्त नाभादास इनके ही शिष्य थे।

२-वास्तवमें औरंगजेब एवं महाप्रभुके समयमें प्रायः ३०० वर्षोंका अन्तर है। इसलिये यहाँ महाप्रभुसे किसी गौड़ीय सम्प्रदायके तत्कालीन प्रभावशाली संतका तात्पर्य ग्रहण करना चाहिये। औरंगजेबपर सर डॉ० यदुनाथ सरकारकी पाँच बड़े जिल्दोंकी अत्यन्त

विनाश कर दैत्य-पक्षकी अभिवृद्धि कर रहा है। नदीहाके वनमें स्थित यज्ञांशने यह सुनकर उस दुराचारीके वंशक्षयका शाप दिया। उनचास वर्षोंतक उस दुष्टात्माने राज्य किया।

उस समय देवपक्षकी वृद्धि करनेवाले सेवाजय (छत्रपति शिवाजी) नामके एक राजा हुए, जो महाराष्ट्रमें उत्पन्न हुए थे तथा युद्धविद्यामें विशारद थे। उन्होंने उस दुराचारीको मारकर उसके पुत्रको वह स्थान दे दिया। फिर वे दक्षिण देशमें चले गये। आलोमा नामके उसके पुत्रने पाँच वर्षतक राज्य किया और वह भी दिवंगत हो गया। तालनके कुलमें बलवान् म्लेच्छ 'फलरुष' हुआ। उसने मुकल (मुगल) कुलका नाश कर दस वर्षतक राज्य किया और अन्तमें वह शत्रुओंसे मारा गया। उसका बेटा महामद हुआ, उसने बीस वर्षतक राज्य किया।

उसी समय नादर (फारस-निवासी नादिरशाह दुर्रानी) नामका एक भारी लुटेरा देशमें आया और आर्योंको मारकर देवताओंको जीतकर वह खुरज (ईरान) देशमें चला गया। महामदका पुत्र था महामत्स्य। उसने अपने पिताके स्थानको ग्रहण

रहे। इस प्रकार तीस वर्ष बीत गये।

इसके बाद सभी देवगण कृष्णचैतन्यके* पास आये। उन्होंने महीतलपर उनके दुःखको जानकर एक मुहूर्तके लिये ध्यानस्थ होकर देवताओंसे कहा—'पूर्वकालमें बुद्धिमान् राघवने राक्षस रावणको जीतकर सुधावृष्टिके द्वारा वानरोंको जीवित कर लिया था। विकट, वृजिल, जाल, बरलीन, सिंहल, जव (जावा), सुमात्र (सुमात्रा) नामके छोटे-छोटे वानरोंने भगवान् रामचन्द्रसे कहा कि हमलोगोंको मनोवाञ्छित वर दीजिये। दाशरथि रामने उनके मनोरथोंको जानकर रावणके द्वारा देवाङ्गनाओंसे उत्पन्न कन्याओंको वानरोंको प्रदान किया और प्रसन्नचित्त हो वानरोंसे कहा कि 'जालंधरद्वारा निर्मित आपलोगोंके नामसे जो द्वीप होंगे, उन द्वीपोंके आपलोग राजा होंगे और ये आपलोगोंकी रानियाँ होंगी। नन्दिनी गौके रुण्ड (धड़)-से जो म्लेच्छ उत्पन्न होंगे वे गुरुण्ड कहलायेंगे। उन्हें जीतकर आपलोग श्रेष्ठ राज्य प्राप्त करेंगे।'

यह सुनकर हरिको नमस्कारकर आनन्दपूर्वक वे सभी द्वीपोंमें चले गये। देवगणो! विकटके वंशमें उत्पन्न तथा उसके द्वारा प्रेरित वानरमुखी गुरुण्ड-

कर पाँच वर्षतक राज्य किया। तालनवंशमें उत्पन्न दुष्ट महामत्स्य महाराष्ट्रियोंद्वारा मारा गया। माधवने देहली नगरमें दस वर्षतक राज्य किया। उसने म्लेच्छ आलोमाके राज्यको प्राप्त किया। उस राष्ट्रमें अपने देशमें उत्पन्न अनेक राजा हुए। देश-देशमें, ग्राममें रहनेवाले बहुत-से राजा हो गये। प्रायः कोई चक्रवर्ती सम्राट् नहीं रहा। सर्वत्र छोटे-छोटे मण्डलीकों (तालुकेदारों)-के अधिकारमें देश विभक्त हो गया। कुछ लोग तो गाँव-गाँवके ही मालिक

लोग व्यापारकी दृष्टिसे यहाँ आये और उनका हृदय ईश-पुत्र (ख्रिष्ट, ईशु या ईसामसीह)-का मतावलम्बी था। वे सत्यव्रती, कामजित, क्रोधरहित और सूर्यपरायण हैं। आपलोग वहाँ रहकर उनका कार्य करें। यह सुनकर देवता सूर्यकी आदरपूर्वक अर्चना कर कलिकातामें आ गये। पश्चिम द्वीपमें विकट नामका राजा हुआ, उसकी पत्नी विकटावती (विक्टोरिया)-ने अष्ट कौशलमार्गसे (पार्लियामेंटके परामर्शसे) शासन किया।

प्रामाणिक ऐतिहासिक जीवनी प्रसिद्ध है। कैम्ब्रिज इतिहासके चौथे भागके उत्तरार्धमें औरंगजेबका वृत्तान्त इन्हींके द्वारा लिखित है। यहाँ चैतन्य शब्दसे भगवान् जगन्नाथ भी अभीष्ट हो सकते हैं।

* यहाँ भी तत्कालीन गौड़ीय सम्प्रदायका कोई आचार्य समझा जाना चाहिये, क्योंकि महाप्रभु चैतन्य तो इससे प्रायः ४५० वर्ष पूर्व हुए थे।

उसके वंशके सात और गुरुण्ड राजा हुए, जो चौंसठ वर्षोंतक राज्यकर नष्ट हो गये। गुरुण्डके आठवें राजातक न्यायपूर्वक शासन करनेपर कलिपक्षीय बलि दैत्यने मुर नामक महान् असुरको देवदेशमें भेजा। वह मुर वार्डिल राजाको वशमें करके आर्य-धर्मके विनाशके लिये तत्पर हो गया। मूर्तिमें स्थित देवगणोंने महाप्रभुचैतन्य यज्ञांशके पास जाकर नमस्कार कर मुर नामक दैत्यके आनेकी बात कही। यह जानकर कृष्णांशने बौद्धपंथी गुरुण्डको शाप दिया कि 'जो मुरके मतमें हैं, वे नष्ट हो जायँगे।' इस तरहकी बात कहनेपर कालसे प्रेरित समस्त दुष्ट गुरुण्ड अपनी सेनाओंके साथ एक वर्षके अंदर ही नष्ट हो गये। वह राजा वार्डिल भी विनाशको प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् मेकल (लार्ड मेकाले) नामक नौवाँ वीर्यवान् (शिक्षाशास्त्री) गुरुण्ड आया। इसने न्यायपूर्वक बारह वर्षतक राज्य किया। दसवाँ लार्डल (लार्ड वेवल) नामक विख्यात गुरुण्डने बत्तीस वर्षतक धर्मपूर्वक राज्य किया। लार्डलके स्वर्ग जानेपर मकरन्दकुलमें उत्पन्न आर्योंने शासन किया। तदनन्तर हिमतुंग-निवासी मौनोंने राज्य प्राप्त किया। वे बभ्रुवर्ण, सूक्ष्म तथा बर्तुल नासावाले एवं दीर्घ मस्तकवाले बौद्धमार्गगामी लाखोंकी संख्यामें देहली आये। उनका राजा हुआ आर्जिक। उसके पुत्र देवकर्णने गङ्गोत्रगिरिके शिखरपर राज्यकी वृद्धिके लिये बारह वर्षतक घोर तपस्या की। उस बुद्धिमान्की तपस्यासे भगवती गङ्गाने उसे दर्शन दिया और कुबेरने उसे आर्योंका मण्डलीक-पद प्रदान किया। तदनन्तर मण्डलीक देवकर्ण प्रजापालक राजा हुआ। साठ वर्षतक उसने महीतलपर राज्य किया। उसके वंशमें देवपूजक आठ राजा हुए। दो सौ वर्षतक राज्य करके वे स्वर्गलोक चले गये। ग्यारहवाँ मौन राजा पत्रगारि हुआ। वह चालीस वर्षतक राज्य करनेके बाद पत्रगोंद्वारा मृत्युको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे महीतलपर मौन-जातियोंका राज्य हुआ।

इसके अनन्तर नागवंशीय, आन्ध्रवंशीय, कौसलदेशीय, नैषधदेशीय, सौराष्ट्रदेशीय तथा गुर्जरदेशीय राजाओंने अनेक वर्षोंतक राज्य किया। गुर्जरदेशमें कलिने आभीरीके गर्भसे 'राहु' नामसे सिंहिकाके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया। जैसे चन्द्रको कष्ट देनेवाला नभोमण्डलमें सिंहिकापुत्र राहु स्थित है, वैसे ही कलिका अंशभूत देवताओंको कष्ट देनेवाला आभीरीका राहु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके उत्पन्न होते ही पृथ्वीपर भयंकर भूकम्प होने लगा। सभी विपरीत ग्रह भयंकर दुःख उत्पन्न करने लगे। उसके भयसे देवगण अपनी-अपनी मूर्तियों-प्रतिमाओंमेंसे देवांशका परित्याग कर सुमेरु पर्वतके शिखरपर महेन्द्रकी शरणमें चले गये। उन लोगोंके कल्याणके लिये भगवान् शक्रने जगदम्बिकाकी स्तुति की। तब कन्यामूर्ति उस कल्याणकारी देवीने देवताओंसे कहा—'देवगणो! मेरे दर्शनसे आपलोग भूख-प्याससे रहित हो जायँगे।' यह सुनकर देवगण प्रसन्न हुए।

आभीरी-पुत्र राहु सौ वर्ष राज्य करके अपना प्राण त्यागकर कलिमें लीन हो गया। उसके वंशमें डेढ़ सौ राजा हुए, जिन्होंने दस हजार वर्षतक राज्य किया। उन्होंने नष्ट हुए महामदके मतका पुनः प्रचार किया। वे सभी म्लेच्छ हुए। उस समय कलियुगमें न वेदाध्ययन था, न वर्ण-व्यवस्था थी और न देवता ही थे। कोई भी मर्यादा नहीं थी। जो शेष ब्राह्मण थे वे अर्बुद शिखरपर रहने लगे और बारह वर्षोतक प्रयत्नपूर्वक देवताओंकी आराधना करने लगे। फलतः अर्बुद शिखरसे खड्ग और चर्मधारी एक क्षत्रिय प्रादुर्भूत हुआ। उसका नाम हुआ अर्वबली। उसने भयंकर म्लेच्छोंको जीतकर पाँच योजन भूमिपर

अर्वपुरीका निर्माण किया। धीरे-धीरे वहाँ आर्य आकर बसने लगे और फिर आर्यकुलकी वृद्धि हो गयी। अर्वबलीने पचास वर्षोंतक राज्य किया। उसके वंशमें डेढ़ सौ राजा हुए। दस हजार वर्षके बाद म्लेच्छोंके मित्र वर्णसंकरोंने

आर्यमार्गानुगामी नाममात्रके रह गये। उस समय मलयदेशस्थ एक लाख म्लेच्छोंका अर्बुदीय आर्योंके साथ भयंकर युद्ध हुआ। उसमें महाबलशाली म्लेच्छोंने विजय प्राप्त की। सम्पूर्ण भूमि म्लेच्छमयी हो गयी और सर्वत्र अलक्ष्मीका निवास हो गया।

प्राप्त होती है। जो व्यक्ति अपने पितरोंके उद्धारके प्राप्त करता है। (अध्याय १३१)

फाल्गुन-पूर्णिमोत्सव

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! फाल्गुनकी पूर्णिमाको ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगरमें उत्सव क्यों मनाया जाता है और गाँवों एवं नगरोंमें होली क्यों जलायी जाती है? क्या कारण है कि बालक उस दिन घर-घर अनाप-शनाप शोर मचाते हैं? अडाडा किसे कहते हैं, उसे शीतोष्ण क्यों कहा जाता है तथा किस देवताका पूजन किया जाता है। आप कृपाकर यह बतानेका कष्ट करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पार्थ! सत्ययुगमें रघु नामके एक शूरवीर प्रियवादी सर्वगुणसम्पन्न दानी राजा थे। उन्होंने समस्त पृथ्वीको जीतकर सभी राजाओंको अपने वशमें करके पुत्रकी भाँति प्रजाका लालन-पालन किया। उनके राज्यमें कभी दुर्भिक्ष नहीं हुआ और न किसीकी अकाल मृत्यु हुई। अधर्ममें किसीकी रुचि नहीं थी। पर एक दिन नगरके लोग राजद्वारपर सहसा एकत्र होकर 'त्राहि', 'त्राहि' पुकारने लगे। राजाने इस तरह भयभीत लोगोंसे कारण पूछा। उन लोगोंने कहा कि महाराज! ढोंढा नामकी एक राक्षसी प्रतिदिन हमारे बालकोंको कष्ट देती है और उसपर किसी मन्त्र-तन्त्र, ओषधि आदिका प्रभाव भी नहीं पड़ता, उसका किसी भी प्रकार निवारण नहीं हो पा रहा है। नगरवासियोंका यह वचन सुनकर विस्मित राजाने राज्यपुरोहित महर्षि वसिष्ठमुनिसे उस राक्षसीके विषयमें पूछा। तब उन्होंने राजासे कहा—'राजन्! माली नामका एक दैत्य है, उसीकी एक पुत्री है, जिसका नाम है ढोंढा। उसने बहुत समयतक उग्र तपस्या करके शिवजीको प्रसन्न किया। उन्होंने उससे वरदान माँगनेको कहा।' इसपर ढोंढाने यह वरदान माँगा कि 'प्रभो! देवता, दैत्य, मनुष्य आदि मुझे न मार सकें तथा अस्त्र-शस्त्र आदिसे भी मेरा वध न हो, साथ ही दिनमें, रात्रिमें, शीतकाल, उष्णकाल तथा वर्षाकालमें, भीतर अथवा बाहर कहीं भी मुझे किसीसे भय न हो।' इसपर भगवान् शंकरने 'तथास्तु' कहकर यह भी कहा कि 'तुम्हें उन्मत्त बालकोंसे भय होगा।' इस प्रकार वर देकर भगवान् शिव अपने धामको चले गये। वही ढोंढा नामकी कामरूपिणी राक्षसी नित्य बालकोंको और प्रजाको पीड़ा देती है। 'अडाडा' मन्त्रका उच्चारण करनेपर वह ढोंढा शान्त हो जाती है। इसलिये उसको अडाडा भी कहते हैं। यही उस राक्षसी ढोंढाका चरित्र है। अब मैं उससे पीछा छुड़ानेका उपाय बता रहा हूँ।

राजन्! आज फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी पूर्णिमा तिथिको सभी लोगोंको निडर होकर क्रीडा करनी चाहिये और नाचना, गाना तथा हँसना चाहिये। बालक लकड़ियोंके बने हुए तलवार लेकर वीर सैनिकोंकी भाँति हर्षसे युद्धके लिये उत्सुक हो दौड़ते हुए निकल पड़ें और आनन्द मनायें। सूखी लकड़ी, उपले, सूखी पत्तियाँ आदि अधिक-से-अधिक एक स्थानपर इकट्ठाकर उस ढेरमें रक्षोघ्न मन्त्रोंसे अग्नि लगाकर उसमें हवनकर हँसकर ताली बजाना चाहिये। उस जलते हुए ढेरकी तीन बार परिक्रमा कर बच्चे, बूढ़े सभी आनन्ददायक विनोदपूर्ण वार्तालाप करें और प्रसन्न रहें। इस प्रकार रक्षामन्त्रोंसे, हवन करनेसे, कोलाहल करनेसे तथा बालकोंद्वारा तलवारके प्रहारके भयसे उस दुष्ट राक्षसीका निवारण हो जाता है।

वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर राजा रघुने सम्पूर्ण राज्यमें लोगोंसे इसी प्रकार उत्सव करनेको कहा और स्वयं भी उसमें सहयोग किया, जिससे वह राक्षसी विनष्ट हो गयी। उसी दिनसे इस लोकमें ढोंढाका उत्सव प्रसिद्ध हुआ और अडाडाकी परम्परा चली। ब्राह्मणोंद्वारा सभी दुष्टों और सभी रोगोंको शान्त करनेवाला वसोर्धारा-होम इस दिन किया जाता है, इसलिये इसको होलिका भी कहा जाता है। सब तिथियोंका सार एवं परम आनन्द देनेवाली यह फाल्गुनकी पूर्णिमा तिथि है। इस दिन रात्रिको बालकोंकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये। गोबरसे लिपे-पुते घरके आँगनमें बहुतसे खड्गहस्त बालक बुलाने चाहिये और घरमें रक्षित बालकोंको काष्ठनिर्मित खड्गसे स्पर्श कराना चाहिये। हँसना, गाना, बजाना, नाचना आदि करके उत्सवके बाद गुड़ और बढ़िया पकवान देकर बालकोंको विसर्जित करना चाहिये। इस विधिसे ढोंढाका दोष अवश्य शान्त हो जाता है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! दूसरे दिन चैत्र माससे वसन्त-ऋतुका आगमन होता है, उस दिन क्या करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! होलीके दूसरे दिन प्रतिपदामें प्रात:काल उठकर आवश्यक नित्यक्रियासे निवृत्त हो पितरों और देवताओंके लिये तर्पण-पूजन करना चाहिये और सभी दोषोंकी शान्तिके लिये होलिकाकी विभूतिकी वन्दना कर उसे अपने शरीरमें लगाना चाहिये। घरके आँगनको गोबरसे लीपकर उसमें एक चौकोर मण्डल बनाये और उसे रंगीन अक्षतोंसे अलंकृत करे। उसपर एक पीठ रखे। पीठपर सुवर्णसहित पल्लवोंसे समन्वित कलश स्थापित करे। उसी पीठपर श्वेत चन्दन भी स्थापित करना चाहिये। सौभाग्यवती स्त्रीको सुन्दर वस्त्र, आभूषण पहनकर दही, दूध, अक्षत, गन्ध, पुष्प, वसोर्धारा आदिसे उस श्रीखण्डकी पूजा करनी चाहिये। फिर आम्रमञ्जरीसहित उस चन्दनका प्राशन करना चाहिये। इससे आयुकी वृद्धि, आरोग्यकी प्राप्ति तथा समस्त कामनाएँ सफल होती हैं। भोजनके समय पहले दिनका पकवान थोड़ा-सा खाकर इच्छानुसार भोजन करना चाहिये। इस विधिसे जो फाल्गुनोत्सव मनाता है, उसके सभी मनोरथ अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं। आधि-व्याधि सभीका विनाश हो जाता है और वह पुत्र, पौत्र, धन-धान्यसे पूर्ण हो जाता है। यह परम पवित्र, विजयदायिनी पूर्णिमा सब विघ्नोंको दूर करनेवाली है तथा सब तिथियोंमें उत्तम है।

(अध्याय १३२)

दमनकोत्सव, दोलोत्सव तथा रथयात्रोत्सव आदिका वर्णन

सुवर्णपुरीके प्रदान करनेसे मनोवाञ्छित फल पूर्ण करें। नारायण! लक्ष्मीकान्त! जगन्नाथ! आप इस अर्घ्यको ग्रहण करें, आपको नमस्कार है।' भी किया था, उसी पुण्यके प्रभावसे त्रैलोक्यपूजित मुझे स्वामीके रूपमें तुमने प्राप्त किया है।

(अध्याय १४७)

कन्या-दान एवं ब्राह्मणोंकी परिचर्याका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! जो विवाह करने योग्य कन्याको अलंकृतकर ब्राह्मविधिसे सुयोग्य वरको प्रदान करता है, वह सात पूर्व और सात आगे आनेवाली पीढ़ियोंको तथा अपने कुलके सभी मनुष्योंको भी इस कन्या-दानके पुण्यसे तार देता है, इसमें संदेह नहीं। जो प्राजापत्य-विधिके द्वारा कन्या-दान करता है, वह दक्षप्रजापतिके लोकको प्राप्त करता है। वह अपना उद्धार कर अपार पुण्य प्राप्त करता है तथा अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त करता है। जो पृथ्वी, गौ, अश्व, गजका दान हीन वर्णको करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। शुल्क लेकर कन्याका दान करनेवाला घोर नरक प्राप्त करता

है और हजारों वर्षोंतक अपवित्र लाला-भक्षण करता हुआ नरकमें जीवन-यापन करता है। इसलिये सवर्णा कन्या सवर्णको ही प्रदान करनी चाहिये। ब्राह्मणके बालक अथवा किसी अनाथको जो चूड़ाकरण, उपनयन आदि संस्कारोंसे संस्कृत करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। अनाथ कन्याका विवाह करानेवाला स्वर्गमें पूजित होता है[१]। पूर्वजोंने कहा है कि जो कन्या-दानके साथ प्रदीप्त शुद्ध स्वर्णका दान करता है, वह द्विगुणित कन्या-दानका फल प्राप्त करता है। कन्याकी पूजासे विष्णुकी पूजाके समान पुण्य होता है।

महाराज! पृथ्वीपर ब्राह्मण ही देवता हैं, स्वर्गमें ब्राह्मण ही देवता हैं। इतना ही नहीं, तीनों लोकोंमें ब्राह्मणसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। ब्राह्मणोंमें यह शक्ति है कि वे मन्त्र-बलके प्रभावसे देवताको अदेवता और अदेवताको देवता बना देते हैं। इसलिये महाभाग! ब्राह्मणकी सदा पूजा करनी चाहिये। देवगण ब्राह्मणसे ही पूर्वमें उत्पन्न हुए ऐसा स्मृतियोंका कथन है। सम्पूर्ण जगत् ब्राह्मणसे ही उत्पन्न है। इसलिये ब्राह्मण पूज्यतम हैं। देवगण, पितृगण, ऋषिगण जिसके मुखसे भोजन करते हैं, उस ब्राह्मणसे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है? धर्मज्ञ! ब्राह्मणोंका कल्याण करनेवाला व्यक्ति स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जब प्रत्यक्ष देवता ब्राह्मण संतुष्ट होकर बोलते हैं तो यह समझना चाहिये कि परोक्षमें देवताओंकी ही यह वाणी है। उसीसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, अतः सदा ब्राह्मणकी सेवा करनी चाहिये। (अध्याय १४८—१५०)

दानकी महिमा और प्रत्यक्ष धेनु-दानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपके श्रीमुखसे मैंने पुराणोंके विषयोंको सुना। व्रतोंको भी मैंने विस्तारपूर्वक सुना, संसारकी असारताको भी मैंने समझा, अब मैं दानके माहात्म्यको सुनना चाहता हूँ। दान किस समय, किसको, किस विधिसे देना चाहिये, यह सब बतानेकी कृपा करें। मेरी समझसे दानसे बढ़कर अन्य कोई पुण्य कार्य नहीं है; क्योंकि धनिकोंका धन चोरोंद्वारा चुराया जा सकता है अथवा राजाद्वारा छिनवाया जा सकता है, अतः धन रहनेपर दान अवश्य करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मृत्युके उपरान्त धन आदि वैभव व्यक्तिके साथ नहीं जाते, परंतु ब्राह्मणको दिया गया दान परलोकमें पाथेय बनकर उसके साथ जाता है। हृष्ट, पुष्ट, बलवान् शरीर पानेसे भी कोई लाभ नहीं है, जबतक कि किसीका उपकार न करे। उपकारहीन जीवन व्यर्थ है। इसलिये एक ग्राससे आधा अथवा उससे भी कम मात्रामें किसी चाहनेवाले व्यक्तिको दान क्यों नहीं दिया जाता? इच्छानुसार धन कब और किसको प्राप्त हुआ या होगा[२]? धर्म, अर्थ तथा कामके विषयमें सचेष्ट होकर जिसने प्रयत्न नहीं किया, उसका जीवन लोहारकी धौंकनीकी भाँति व्यर्थ ही चलता है। जिस व्यक्तिने न दान दिया, न हवन किया, तीर्थस्थानोंमें प्राण नहीं त्यागा, सुवर्ण, अन्न-वस्त्र तथा जल आदिसे ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं किया, वही व्यक्ति जन्म-जन्ममें अन्न, वस्त्ररहित, रोगसे ग्रसित, हाथमें कपाल

१- द्विजपुत्रमनाथं वा संस्कुर्याद्यश्च कर्मभिः।
चूडोपनयनाद्यैश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत्। अनाथां कन्यकां दत्त्वा नाकलोके महीयते॥ (उत्तरपर्व १४८। ७-८)

२-ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते। इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥ (उत्तरपर्व १५१। ६)

लेकर दर-दर भटकता हुआ याचना करता रहता है। अनेक प्रकारके कष्टोंको सहकर प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जो धन एकत्र किया गया है, उसकी एक ही सुगति है दान। शेष भोग और नाश तो प्रत्यक्ष विपत्तियाँ ही हैं[१]। उपभोगसे और दानसे धनका नाश नहीं होता, केवल पूर्व-पुण्यके क्षीण होनेसे ही धनका नाश होता है। मरणोपरान्त धनपर अपना स्वामित्व नहीं रह जाता, इसलिये अपने हाथसे ही सुपात्रको धनका दान कर लेना चाहिये। राजन्! किसी पुण्य दिनमें स्नानकर पितरोंका तर्पणकर भगवान् शिव और विष्णुका घी और दुग्धसे अभिषेक करनेके बाद सोनेके सींगयुक्त, रौप्य खुरवाली, कांस्यके दोहन-पात्रसहित सवत्सा गौका पुष्प आदिसे भलीभाँति पूजन करना चाहिये, उसे वस्त्र तथा माला आदिसे अलंकृत कर ले। गौको पूर्व या उत्तराभिमुख खड़ा करना चाहिये। अनन्तर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको गौका दान करना चाहिये और प्रार्थनापूर्वक इस प्रकार प्रदक्षिणा

دھی کو سم شانت سکھانا کامی پُرش کو بھگوت کتھا سکھانا ایسا نشپھل ہے جیسے
زمین مین بیج بونا نشپھل ہو۔ ۵۔ جب لچھمن جی سے شری رام چندر جی نے دھنکھ بان
یہ بات لچھمن جی کے من کو بہت بھائی اور دھنکھ بان لا دیا۔ ۶۔ جب شری رام چندر جی
دھنکھ کو چڑھایا تب تو سمدر کے ہردے مین بڑی جلن اُٹھی۔ ۷۔ اس جلن سے
نے لگا اور پانی کے سب جیو جنت گھبرا اُٹھے۔ ۸۔ جب سمدر نے انکو اس آگ مین
تاتب تو ترنت ہی سونے کے تھار مین انیک پرکار کے من لیکر براہمن کا روپ رکھکر
(غرور) چھوڑ کر شری رام چندر جی کے پاس آیا۔ ۲۳۔ دوہا۔ دیکھو کدلی جو کیلا ہے
ڈالنے ہی سے پھلتا ہے کوئی کروڑ جتن سے اسکو سینچا ہی کرے اسی طرح ہے گرڑ جی
نیچ نہین مانتا ہے ڈانٹنے ہی سے جھکتا ہے۔

سنہو سُندر پد کہہ پربھ کیرے	چھمو ناتھ سب اوگن میرے
گگن سمیر انل جل دھرنی	انکی ناتھ سہج جڑ کرنی
تو پریرت مایا اُپجائے	سرشٹ ہیت سب گرنتھن گائے
پربھ آئس جاکا جس اہئی	سو تیہ بھانت رہی سکھ لہئی
پربھ بھل لینہ موہ سکھ دینہی	مرجادا پن تمہری کینہی
ڈھول گنوار شودر پشو ناری	سکل تاڑنا کے ادھکاری
پربھ پرتاپ مین جاؤن سکھائی	اُتری کٹک نہ مور بڑائی

۸	پربھ اگیا اپیل شرت گائی		کرون بیگ جو تمہین سہائی
۲۴۔ دوہا	سنت بنیت بچن اَت کہہ کرپال مسکائے جیہ بدھ اُترے کپ کٹک تات سو کہو اپائے		

۱۔ بہت ہی ڈرتا ہوا سمدر آیا اور شری رام چندر جی کے چرن پکڑ لیے اور بولا کہ ہے ناتھ
میرے سب اپرادھون کو آپ چھما کیجیے۔ ۲۔ ہم تو آکاش پون پرتھوی اگن جل ان پانچ
تتو مین سے ہین ہماری کرنی تو سوبھاو ہی سے جڑ ہے۔ ۳۔ آپ ہی کی آگیا سے آپکی مایا
نے ہمکو پیدا کیا ہے اور سب گرنتھون مین ہم پانچو جگت پیدا ہونے کے کارن ہی کہے ہین۔
۴۔ ہے سوامی جسکو جیسی آگیا آپ کی ہے وہ اسی طرح پر رہتا ہے اور سکھ پاتا ہے۔ ۵۔ آپنے
بہت اچھا کیا جو مجھکو سکھاون دی۔ چوپائی۔ شانت کرپن کرین لپاؤ۔ ناتھ برچھن کر
یہی سبھاؤ۔ پرنت یہ میری بڑائی بھی آپ ہی کی دی ہوئی ہے۔ ۶۔ ڈھول گنوار پشو
شودر استری یہ سب تاڑنا (سزا دینے) ہی کے لائق ہوتے ہین۔ ۷۔ آپکے پرتاپ
سے مین ابھی سوکھ جاؤنگا اور سب سینا آپکی اُتر جائیگی پرنت جو بڑائی آپنے مجھکو دی ہے
وہ نہین رہیگی۔ ۸۔ اور آپکی آگیا کو بیدون نے اپیل کہی ہے (یعنی ٹل نہین سکتی ہے)
اس سے جو آپکو رچے سو جلدی کیجیے۔ ۲۴۔ دوہا۔ سمدر کے ایسے بچن بہت نمنی کے سنکر
اَت کرپال شری رام چندر جی نے مسکا کر کہا کہ ہے تات جس طرح ہمارے بندرون کی سینا
اُتر جائے وہ اپائے تم کہو ہمکو تمہارے سو کہنے سے کچھ پرَوجن نہین ہے۔

देवता हैं, वही अध्यात्म में प्राण आदि हैं ॥

आठवां खण्ड

योषा वाव गौतमाग्निः स्तस्या उपस्थ एव समिद्‌ यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽ-गारा अभिनन्दा विस्फुलिंगाः ॥

स्त्री हे गौतम अग्नि है ....* ॥ १ ॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति, तस्या आहुते गर्भः सम्भवति ॥ २ ॥

इस अग्नि में देवता (प्राण) वीज की आहुति देते हैं, उस आहुति से गर्भ उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

नवां खण्ड

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसोभवन्तीति। स उल्बावृतो गर्भो दश वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाऽथ जायते ॥ १ ॥

इस प्रकार पांचवीं आहुति में जल पुरुष कहलाते † हैं। अब वह गर्भ चमड़े से लपेटा हुआ दस महीने अथवा जितना चिर (न्यून अधिक) अन्दर रह कर तब उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

* शेष अर्थ मूल से देखो ॥

† यह पांचवें प्रश्न का उत्तर दिया गया, कि आहुति के जल जो द्यौ में श्रद्धारूप से वर्तमान थे, उनकी आहुति होकर सोम, सोम की आहुति होकर वृष्टि, वृष्टि की आहुति होकर अन्न, अन्न की आहुति होकर वीर्य और वीर्य्य की आहुति होकर पुरुष के रूप में फिर वापिस आ गए। अब इस के आगे पहले प्रश्न [क्या तू जानता है, कि कैसे यह प्रजाएं यहां से जाती हैं] का उत्तर आरम्भ करते हैं ॥

स जातो यावदायुषं जीवति, तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति यत एवेतो यतः सम्भूतो भवति ॥ २ ॥

वह जन्म लेकर जब तक उसका आयु है जीता है। जब वह मरता है, और अब जिसे कर्मों ने अगला रस्ता बतला दिया है। तो उसे अग्नि (चिताकी अग्नि) के लिए ही ले जाते हैं, जहां स (श्रद्धा आदि की आहुति के क्रम से) वह आया है, जहां से वह उत्पन्न हुआ है * ॥ २ ॥

दसवां खण्ड

तद्य इत्थं विदुर्ये चेमे ऽरण्ये श्रद्धां तप इत्युपासते, तेऽर्चिषमभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाण पक्षाद्‌ यान्‌ षडुदङ्ङेति मासांस्तान्‌ ॥१॥

वह जो इस प्रकार (इस पञ्चाग्नि विद्या को और पांच अग्नियों द्वारा अपने जन्म को) जानते हैं (वह चाहे गृहस्थ भी

ادھیاے تیرھوان

دوہا

دیتن کو موہت کیو کو پوشکر انوپ	تیرہ کے ادھیاے مین گرو دھر شکر سروپ

اتنی کتھا سن راجہ جنمیجی جی نے بیاس سے پوچھا کہ برہسپت جی نے پھر پروہت ہوجانے کے پیچھے کیا کیا وہ مہربانی سے
بڑے سندیہ کی بات ہی کہ برہسپت جی دیوتون کے گرو اور انگرا کے پتر دھرم شاستر اور پوران اور بید
جو ٹھ بولتے ہین تو اور لوگ کیون جھوٹھ نہ بولین گے ایسا تو انکو مناسب نتھا جیسا انھون نے کیا تھا اور بو
اور دیوتا فریب کرنے مین نہایت ہوشیار ہین تو اور لوگون کا کیا کہنا ہی اور جب بسشٹ نام دیو لسوا متر
فریب کرنے لگے تو دھرم کہان رہا اور اندر اگن چندر ما برہما اگر یہی لوگ دوسری استری سے بھوگ کرنے

112

تینون لوکون مین کسی مین رہیگی اور کنکے بچن اُپدیش کے لیے مانے جاوینگے کیونکہ برہسپت وغیرہ کی تو یہ حالت رہی کہ دیوتون کے
کہنے سے شکر جی کا روپ دیتون کو فریب دینے کے لیے دھارن کرلیا تو پھر دنیا مین کون فریب نکریگا یہ سن بیاس جی اول بچن بولے
کہ برہما کیا اور دیو یہ سب راگی ہین کیونکہ جو سریر کو دھارن کریگا اسمین ضرور لبکار ہوگا کیونکہ جتنے ہین اسلیے انکا راگی ہونا سبھکو معلوم
نہین ہوتا وقت پر یہی ورنے اور وقت پر جنم لیتے ہین پھر انکے جھوٹھ بولنے اور فریب دینے مین آپ کو کیا شک ہوا۔ یہ دنیا اسطرح
کی ہی بھلا دنیہ دھارن کرکے کون پاپ نہین کرتا دیکھو برہسپت کی استری چندرما نے لے لی تھی اور برہسپت نے اپنے چھوٹے
بھائی انرت کی استری لے لی۔ بھلا پہلے سنسار ساگر مین بھی جنم ہونا دکھ کا دینے والا ہی پھر گرہست آسرم کہ جسمین پڑکر آدمی چھوٹ
رہ نہین سکتا اسلیے یہی مناسب ہی کہ مہامایا بھگوتی کا دھیان کیا کرین اس سنسار مین ڈوبتے ہوئے کو پار اتارنے کے لیے وہی
مضبوط ناو ہی یہ سن راجہ بولے خیر یہ باتین تو سنی اب یہ احوال کہیے کہ برہسپت نے دیتون کے گرو بنکر کیا کیا اور شکر جی کتنے دن
پیچھے آئے یہ سن بولے کہ سنیے برہسپت جی نے شکر جی کا بھیس دھر دیتون کو خوب سمجھا کر اپنے قابو کیا۔ اور وہان جب دس برس
گذر گئے تب شکر اچارج نے جینتی اپنی استری سے کہا کہ اب ہم اپنے چیلون دیتون کی رچھیا کرآوین تو پھر تمھارے پاس آوینگے
جینتی نے کہا جائیے یہ سن شکر جی دیتون کے یہان آئے تو کیا دیکھا کہ میرا روپ دھارن کیے برہسپت دیتون کو جین مت
سکھا رہے ہین جسمین جگیہ اور بید وغیرہ کی تنداہت ہی یہ دیکھ شکر کہنے لگے۔

چوپائی

دھرم روپ کہت من مانا	چھلس وہونت تمیہ مم جانا
جیہی لبس شر گرم کہا بچاری	تو بھی اودھاکھ جمہ نرک گرادی
سواب کہت ہما گیانا	جگ جیسے تجہین کرت پرمانا
تاکے بھیے نہ کچھ من بھاوت	تو بہہ جیت سوئی کرت کراوت

ادھیاے چودھوان

دوہا

گرو کو گرو تب جان نج سراپ شکر تن دین	چودہ کے ادھیاے مین شکر نراد رکین

سری بیاس جی بولے کہ شکر اچارج یہ بچارتے بچارتے دیتون سے کہنے لگے کہ تمھارے گرو شکر جی ہم ہین یہ دیوتون کے اچارج
برہسپت ہین یہان انھین کا کام کرنے کو آئے ہین کیا تم انکے جال مین آگئے انکو نہین پہچانتے تم انکے بچن نہ مانو اور نہ انکے
جین مت کو مانو اب دونون کی ایک ہی سی شکل دیکھ دیت نہایت متعجب ہوئے کہ انمین ہمارے گرو کون مین کہ اسوقت
برہسپت جی دیتون سے بولے کہ تم انکے بچن کبھی نہ ماننا یہ دیوتون کے گرو برہسپت ہین جو کہ ہمارا روپ دھارن کرکے تمکو

नररत्न ! वे कठोर व्रतधारी ब्राह्मण केवल ऋतुकालमें ही उनके साथ मिलते थे; न तो कामवश और न बिना ऋतुकालके ही ॥ ६ ॥

तेभ्यश्च लेभिरे गर्भं क्षत्रियास्ताः सहस्रशः ।
ततः सुषुविरे राजन् क्षत्रियान् वीर्यवत्तरान् ॥ ७ ॥
कुमारांश्च कुमारीश्च पुनः क्षत्राभिवृद्धये ।
एवं तद् ब्राह्मणैः क्षत्रं क्षत्रियासु तपस्विभिः ॥ ८ ॥
जातं वृद्धं च धर्मेण सुदीर्घेणायुषान्वितम् ।
चत्वारोऽपि ततो वर्णा बभूवुर्ब्राह्मणोत्तराः ॥ ९ ॥

राजन् ! उन सहस्रों क्षत्राणियोंने ब्राह्मणोंसे गर्भ धारण किया और पुनः क्षत्रियकुलकी वृद्धिके लिये अत्यन्त बलशाली क्षत्रियकुमारों तथा कुमारियोंको जन्म दिया । इस प्रकार तपस्वी ब्राह्मणोंद्वारा क्षत्राणियोंके गर्भसे धर्मपूर्वक क्षत्रिय-संतानकी उत्पत्ति और वृद्धि हुई । वे सब संतानें दीर्घायु होती थीं । तदनन्तर जगत्में पुनः ब्राह्मणप्रधान चारों वर्ण प्रतिष्ठित हुए ॥ ७–९ ॥

अभ्यगच्छन्नृतौ नारीं न कामान्नानृतौ तथा ।
तथैवान्यानि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ १० ॥
ऋतौ दारांश्च गच्छन्ति तत् तथा भरतर्षभ ।
ततोऽवर्धन्त धर्मेण सहस्रशतजीविनः ॥ ११ ॥

उस समय सब लोग ऋतुकालमें ही पत्नीसमागम करते थे; केवल कामनावश या ऋतुकालके बिना नहीं करते थे । इसी प्रकार पशु-पक्षी आदिकी योनिमें पड़े हुए जीव भी ऋतुकालमें ही अपनी स्त्रियोंसे संयोग करते थे । भरतश्रेष्ठ ! उस समय धर्मका आश्रय लेनेसे सब लोग सहस्र एवं शत वर्षोंतक जीवित रहते थे और उत्तरोत्तर उन्नति करते थे ॥

ताः प्रजाः पृथिवीपाल धर्मव्रतपरायणाः ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव विमुक्ताः सर्वशो नराः ॥ १२ ॥

भूपाल ! उस समयकी प्रजा धर्म एवं व्रतके पालनमें तत्पर रहती थी; अतः सभी लोग रोगों तथा मा[illegible] चिन्ताओंसे मुक्त रहते थे ॥ १२ ॥